बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

'बच्चन' के साहित्य में सौन्दर्यानुभूति
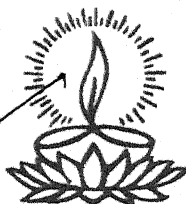
शोध-निर्देशक

डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
रीडर एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (उ०प्र०)

अनुसंधित्सु

श्रीमती माधुरी शुक्ला
७०२/१ सिविल लाइन्स
झांसी (उ०प्र०)
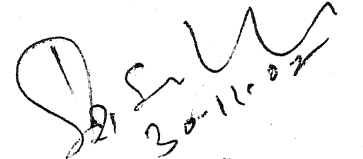
शोध-केन्द्र - गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय उरई (उ०प्र०)
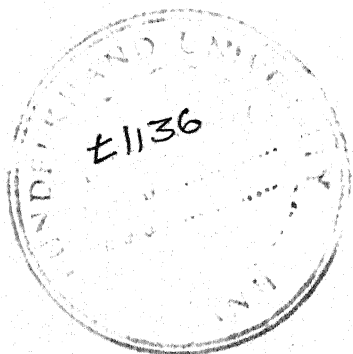
सत्र २००१-२००२

प्रमाण-पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए हर्ष है कि श्रीमती माधुरी शुक्ला ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी द्वारा स्वीकृत शोध-विषय **'बच्चन' के साहित्य में सौन्दर्यानुभूति** पर निरन्तर मेरे सम्पर्क में रह कर अनुसंधान-कार्य सम्पन्न किया है। इस उपक्रम में इन्होंने विश्वविद्यालय शोध-परिनियमावली के सभी उपबन्धों का पूर्ण पालन किया है। यह इनका मौलिक अनुसंधान कार्य है। मैं इस शोध-प्रबन्ध को विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति के साथ अनुसंधित्सु के ज्योतिर्मय भविष्य की कामना करता हूँ।

30-11-07

डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई (उ०प्र०)

'बच्चन' के साहित्य में सौंदर्यानुभूति

अनुक्रमणिका

स्वस्ति

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी द्वारा शोध के लिये स्वीकृत विषय - 'बच्चन' के साहित्य में सौंदर्यानुभूति'' पर अनुसंधान करने के लिये बच्चन के जीवन के बहिरंग तथा अन्तरंग सन्दर्भों से साक्षात्कार करने के लिये उपजीव्य तथा उपस्कारक ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके जीवन तथा रचनाधर्मिता को निकट से देख सके लोगों से मिल कर अनुसंधानात्मक यथार्थ की आत्मा को चीन्हने की ईमानदार चेष्टा ने मुझे बच्चन के अतिशय निकट पहुंचा दिया। मेरा प्रयासमूलक उपक्रम कब नैष्ठिक अनुष्ठान बन गया - इसका बोध इस सारस्वत यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् ही हो सका। 'सुन्दरम्' के अनन्तव्यापी क्षितिज में आत्मलीन होकर मेरी व्यक्तिगत सत्ता शिवनिष्ठ सत्य में समाहित हो गई। अनुसंधानकालीन तल्लीनता में मैं, आध्यात्मिक पीठिका में आसीन होकर परम् सत्ता की आनन्दमयता से सराबोर हो गई। मेरी अन्तश्चेतना का पोर-पोर सौन्दर्यानुभूति से भीग कर रसविभोर हो उठा।

शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय 'सौन्दर्यानुभूति : एक समाकलन' के अन्तर्गत भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों के अभिमत तथा स्थापनाओं के आधार पर सौन्दर्य को पहचानने तथा परिभाषित करने की चेष्टा तथा निष्कर्षपरक अवधारणा है। इस अध्याय में सौन्दर्यानुभूति और साहित्य के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का निरूपण भी किया गया है।

द्वितीय अध्याय में बच्चन युगीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का उल्लेख है। बच्चन का जन्म-काल काव्येतिहास की दृष्टि से छायावाद के उत्कर्ष का काल था, जिसमें कवि अपनी प्रेयसी से काल्पनिक साहचर्य स्थापित करता था अथवा प्रकृति के माध्यम से अपनी रागात्मक वृत्तियों को समाधान देने की प्रच्छन्न चेष्टा करता था। इसकी प्रतिक्रिया में सूक्ष्म के प्रति स्थूल के विद्रोह के रूप में मार्क्सवादी अवधारणायें प्रस्तुत करता प्रगतिवाद आ उपस्थित हुआ। छायावादी सौन्दर्यबोध को झकझोर कर प्रगतिवाद के प्रवर्तकों के रूप में पहचान पैदा करने वालों से अलग रह कर बच्चन बड़ी सहजता से धरती और आकाश के बीच समन्वय स्थापित कर सके। वस्तुतः छायावादी अति ऊर्ध्व तथा प्रगतिवादी अति भौतिकता के बीच 'अतिसमता' का प्रवर्तन करके बच्चन ने तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों में एक बेआवाज - अघोषित आंदोलन का प्रादुर्भाव किया था। बच्चन ने अति साहस से अपनी रागात्मकता का ऐलान

किया था। सौन्दर्य, प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास तथा पीड़ा का इज़हार करते समय बच्चन छायावादी कवियों की भांति संकोच, रहस्य तथा आदर्श का आवरण नहीं डालते, प्रत्युत साहस के साथ निश्छल हृदय से अपनी रागात्मक सौन्दर्यानुभूति का लोकार्पण करते हैं। बच्चन वस्तुतः सौन्दर्यानुभूति के कवि हैं। प्रेम इनकी केन्द्रीय वृत्ति है। संयोग और वियोग की मर्मभेदी परिस्थितियों की स्वानुभूति उल्लास, आह्लाद, उदासी, पीड़ा, टूटन, आशा-निराशा तथा अवसाद से विभोर कवि ने अपने सृजन में आदर्श के छल को ठुकराकर अपनी अस्मिता की खुली घोषणा की है।

तृतीय अध्याय में बच्चन की समस्त काव्यात्मक तथा काव्येतर कृतियों का संक्षिप्त परिचय है।

चतुर्थ अध्याय में बच्चन के काव्यात्मक सृजन-संसार की सौन्दर्यानुभूति की सूक्ष्म पड़ताल की गई है। प्रत्यक्ष सौन्दर्यानुभूति के अतिरिक्त यदा-कदा ध्वनिश्लेष के माध्यम से सौन्दर्य-बोध के मनोरम स्थल मर्मस्पर्शी हैं।

पंचम अध्याय में बच्चन के काव्येत्तर साहित्य में सौन्दर्यानुभूति का शोधपरक निरूपण है। इस परिप्रेक्ष्य में कवियों में सौम्य संत, क्या भूलूं क्या याद करूं, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर, दश द्वार से सोपान तक विशेष द्रष्टव्य कृतियां हैं।

षष्ठ अध्याय में उनके समग्र साहित्य की समीक्षा करते हुए सारांश रूप में उपलब्धि व महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। उनका साहित्य चेतना के मर्म का साक्षात्कार करता हुआ अपने व्यापक पटल पर एक ओर संवेदनाओं के सहज मधुर, अतलस्पर्शी दिव्य लोकों के सूक्ष्म सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य का विचरण कराता है और दूसरी ओर व्यथा, हताशा, कुण्ठा तथा अवसाद की घनीभूत प्रतीतियों में प्रवेश कराता है।
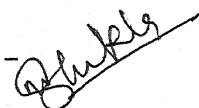
अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत उपजीव्य ग्रन्थ, उपस्कारक ग्रन्थ तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत की गई है।

इस शोध यात्रा में विषय प्रतिपादन, रूप रेखा तथा अनुसंधान के ध्रुवान्त तक पहुंच सकने में मेरे गुरु जी डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी के शुभाशीष के प्रति आभार-प्रदर्शन करना, उनके प्रति मेरी आत्मीय श्रद्धा का अगम्भीर प्रदर्शन होगा। मैं अपने पितृव्य डॉ० श्यामसुन्दर द्विवेदी जी के प्रति विशेष कृतज्ञ हूँ। उन्होंने समय-समय पर अपना अमूल्य परामर्श देकर मेरी दुरूह यात्रा को सुगम बनाया है। वह 'बच्चन' के समकालीन रहे हैं, अतः 'बच्चन' के जीवन के कतिपय अलिखित

अन्तरंग सन्दर्भ उन्हीं की कृपा से मुझे उपलब्ध हो सके। मैं कविवर अवधेश जी की प्रेरणाओं के लिये भी कृतज्ञ हूँ। उन्होंने शोधकार्य के दौरान मेरा उत्साह बढ़ाया। मैं अपने पति श्री रवीन्द्र शुक्ल के प्रति विशेष आभारी हूँ। राजनैतिक व्यस्तता तथा साहित्यिक रचनाधर्मिता में अहर्निश निमग्न रहते हुए भी दुर्लभ उपजीव्य तथा उपस्कारक ग्रन्थों को उपलब्ध कराने की तथा हताशा के क्षणों में नवोत्साह प्रदान करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और परिस्थिति में मेरे सहयात्री हैं। शोध कार्य के दौरान मैं ब्लड कैंसर जैसे असाध्य रोग से ग्रस्त हो गई। यह काल खण्ड मेरे लिये निराशा, कुण्ठा, तथा निरुत्साह का यन्त्रणादायक चंक्रमण था। गुरुजनों की कृपा तथा मेरे जीवन साथी के सहयोग से मैं इस दुष्काल से उबर सकी और अपनी शोध यात्रा का पुनर्प्रारम्भ कर सकी। मैं डॉ० एन०डी० समाधिया 'प्राचार्य गांधी महाविद्यालय उरई' के प्रति भी आभारी हूँ। उन्हीं के सद्परामर्श से मैं अपने शोध निदेशक डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी तक पहुंच सकी। मैं अपने परिजनों, मित्रों तथा अनेक अपरिचित सहयोगियों के प्रति भी आभारी हूँ, जिनकी सद्भावनायें मुझे सतत् प्रेरणायें देती रहीं।

मैं विभिन्न विख्यात, अल्पख्यात तथा अख्यात विद्वज्जनों के प्रति भी हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, जिनके उपजीव्य तथा उपस्कारक ग्रन्थों की सामग्री का मैंने अपने शोध कार्य में उपयोग किया है।

अन्त में मैं यह शोध प्रबन्ध अपनी जन्मदात्री श्रीमती जानकी देवी के कर कमलों में श्रद्धा के चरमातिरेक में समर्पित करती हूँ।

अनुसंधित्सु -

माधुरी शुक्ला

'बच्चन' के साहित्य में सौंदर्यानुभूति

विषय प्रवेश

२७ नवम्बर १६०७ ई० में इलाहाबाद में जन्में डॉ० हरिवंश राय 'बच्चन' ने छायावाद कालीन साहित्यिक परिवेश, जिसने भौतिक तथा आध्यात्मिक द्वैत तथा संघर्ष की आधुनिक समस्याओं से लोहा लेने के साथ समाजवादी तथा व्यक्तिवादी चेतना के विकास की सम्भावनाएं उत्पन्न की थी - से गुजरते हुए उत्तर छायावाद के उद्भव में सहयोग किया था। वस्तुतः छायावादी युग में, समाजवादी तथा व्यक्तिवादी चेतना के समन्वय के साथ-साथ भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के बीच भी समन्वय के प्रयास हो रहे थे। यह प्रयास इसलिये हो रहे थे कि कल्पना और यथार्थ के बीच दूरियां इतनी बढ़ती चली जा रही थीं कि आकाश और धरती - दोनों की अतिशयता एक दूसरे के प्रति विद्रोहों को जन्म देने लगी थी। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी के दशकों में साहित्यिक चेतना में विद्रोही वात्याचक्र परिलक्षित होने लगे। छायावादी युग में अति ऊर्ध्व के विरुद्ध, अतिसमता के प्रस्तुतीकरण के प्रति आग्रही चेष्टाओं ने शनैः शनैः प्रयोगवादी तथा समकालीन कविता को जन्म दिया। छायावाद को झकझोर कर प्रगतिवाद के प्रवर्तकों के रूप में पहचान पैदा करने वालों से अलग रहकर बच्चन बड़ी सहजता और स्वभाविकता से आकाश और धरती - दोनों के बीच समन्वय स्थापित कर, हिन्दी कविता की खड़ी बोली में एक बेआवाज़ परिवर्तन कर चुके थे। चूँकि उन्होंने इस परिवर्तन का ऐलान नहीं किया था और आन्दोलन की नारेबाजी नहीं की थी, अतः बिना सूक्ष्म गवेषणा के इस परिवर्तन के सूत्रधार के रूप में उनकी पहचान करना ही कठिन हो गया- "हिन्दी में शताब्दी के मध्य दशकों में जो नई कविता का आन्दोलन चला वह वास्तव में छायावादी अतिऊर्ध्व की प्रतिक्रिया में अतिसमता का आन्दोलन था। एक अर्थ में यह आन्दोलन, गो आन्दोलन की शक्ल में हरगिज नहीं, मेरी कविता के साथ ही आरम्भ हो गया, पर 'आउटसाइडर' की ओर 'इनसाइडर' की नज़र नहीं जाती। खैर" [1]

सन् १६५२ में कैम्ब्रिज मे शोधकार्य के दौरान बच्चन को जो नीरसता होती थी और वे अपने निदेशक डॉ० हेन के सानिध्य में जो सहृदयता का अनुभव करते थे, उसको उन्होंने 'रेगिस्तान में मरुद्यान' माना था। उन्होंने उस पर एक कविता "रेगिस्तान का सफर" लिखी थी। जिसमें

---

१ बच्चन - बसेरे से दूर - पृष्ठ १६४

छायावादी लक्षणों तथा प्रवृत्तियों से हटकर कविता का एक नया चेहरा दिखाई पड़ा था। इस कविता को नई कविता का श्री गणेश या कम से कम नयी कविता की पूर्व पीठिका तो कहा ही जा सकता है यथा -

हमने माना
रेगिस्तान के उसपार है बहारिस्तान
जहाँ हैं छायादार दरख़्त
जहाँ बहती है नीले पानी की लहर
चलती है ठंडी हवा सर, सर, सर.......
करती है सौरभ की बौछार
हर मौसम में हर वक्त
मेहरबान है आसमान
गूँजता है छोटी-छोटी चिड़ियों का गान
मुलायम-मुलायम पत्तियों का मर्मर स्वर [१]

बच्चन की कविता जिन्दगी से जुड़ी कविता है। उन्होंने व्यक्तिवादी अनुभूति की गहराइयों में पैठकर अपनी सामाजिक पहचान बनाई। "इनकी कविता जीवन से पूरी तरह विमुख नहीं है। जहाँ यह 'मधुशाला' में पूरी तरह मस्त दिखाई देते हैं, वहां भी उन्हें यह भान कहाँ है कि मधुशाला धार्मिक, साम्प्रदायिक अंतराल को दूर कर अनुभूति के धरातल पर चाहे वह अनुभूति कर्महीन मस्ती की ही क्यों न हो; एकता की स्थापना करती है। ...... मधुशाला में डूबा यह कवि सामाजिक विषमता से अनजान नहीं है। उसने एक ओर तो उद्दाम यौवन की लालसा को अपनाया है और दूसरी ओर उसी स्तर पर सामाजिक संवेदना को भी मुखर करने का प्रयास किया है" [२]

आकाश और धरती - दोनों को एक साथ थामे रहने का प्रयास करने वाले किसी ध्रुवान्त बिन्दु तक नहीं पहुँच पाते। बच्चन के साथ भी यही हुआ। जीवन की विषमताओं को एक सामान्य अनुभूति के स्तर पर सुलझाने का प्रयास करते हुए उसके अन्तिम छोर को छूने में वे चूक गये। उनकी रचनाओं से उनकी मर्मभेदी सामर्थ्य की अनेक बार प्रतीति होती है। बच्चन के काव्य पर यदि दृष्टि डाली जाय तो वे छायावादी कवियों की भाँति ही रोमांटिक चेतना से जुड़े प्रतीत होते हैं। वस्तुतः जगत के प्रति इनकी भी प्रतिक्रिया भावात्मक है। बच्चन के भौतिक संसार की प्रतिक्रिया

---

१ बच्चन - रेगिस्तान का सफ़र
२ डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं०५५६

से उत्पन्न वैयक्तिक सुख-दुःख से गहरे जुड़े रहने के कारण इनकी रचनाओं में आत्मसम्पृक्ति और उत्तेजना के हाहाकारी स्वर सुनाई पड़ते हैं।

सौंदर्य, प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास तथा विषाद को अभिव्यक्ति देते समय बच्चन छायावादी कवियों की भांति संकोच, रहस्यात्मकता तथा आदर्शवादिता की केंचुल धारण नहीं करते, प्रत्युत साहस के साथ निश्छल हृदय से अपनी रागात्मकता का प्रस्तुतीकरण करते हैं। बच्चन वस्तुतः सौंदर्यानुभूति के कवि है। प्रेम इनकी केन्द्रीय वृत्ति है। संयोग और वियोग श्रंगार की विविध मर्मस्पर्शी परिस्थितियों से उत्पन्न उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन, आशा, निराशा तथा असन्तोष से सराबोर बच्चन ने अपनी रचनाओं में आदर्श के छल को ठुकरा कर अपनी अस्मिता का खुला ऐलान किया है। 'निशा निमन्त्रण', 'आकुल अन्तर' और 'एकान्त संगीत' प्रीति की पीड़ा के निर्व्याज घोषणा पत्र हैं; जिससे छलकती सौंदर्यानुभूति चेतना की गहराइयों का स्पर्श करके उसे आर्द्र कर देती है। [१]

यह घनीभूत पीड़ा धरती और आकाश के बीच पूर्ण सच्चाई के साथ खड़ी है। उसे इसके होने के प्रति ग्लानि नहीं, बल्कि प्रीति की इस सहज परिणति के प्रति कवि-प्रदत्त साहसिक मान्यता है; इन संवेगात्मक स्थितियों के प्रति कवि की आंसुओं से भीगी स्वीकृति तथा लहू से हस्ताक्षरित आत्म समर्पण है। कवि की प्रेमपरायण स्वच्छन्द चेतना, सौंदर्य तथा प्रेम की तृषा लिये अतृप्ति के मरुस्थल में भटकती हुई, सामाजिक वर्जनाओं के तटबंधों से टकराकर बार-बार लहू-लुहान होती है। सामाजिक निषेध से चोटिल कवि की पीड़ा, उसकी रचनाओं में फूट-फूट कर बह निकलती है। उसकी सहज प्रीति, वासना के रूप में निन्दित होकर कवि को व्याकुल कर देती है; बच्चन की असहाय व्यथा और स्पष्टीकरण की अभिव्यक्ति का एक उदाहरण देखिये -

वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी
मैं छुपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है
छल रहित व्यवहार मेरा
कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा [२]

---

१ डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ५५६
२ बच्चन - मधुकलश - कवि की वासना - पद - ८

बच्चन की रचनाओं में विशेष रूप से काव्य में निराशा और उदासी का स्वर केवल प्रेममूलक ही नहीं है, देश की परतन्त्रता, दूषित रूढ़ियों, परम्पराओं, प्रथाओं तथा आर्थिक विसंगतियों से जूझता एकाकी स्वच्छन्द संवेदनशील तथा विकराल पस्थितियों से टकराकर बार-बार चूर-चूर हो जाता है। उनका व्यक्तिवादी आक्रोश, समस्त कुत्साओं को अस्वीकार करता हुआ किंतु स्वयं कहीं स्वीकृत तथा समादृत न होता हुआ, स्वयं में ही प्रत्यावर्तित होकर अपने अस्तित्व में सिमट-सिकुड़ जाता है। हताशा, व्यथा, कुंठा तथा टूटन की पर्तें अपने कवि कर्म के माध्यम से, अपने अस्तित्व के द्वारा, कवि ने गीतों के रूप में प्रस्तुत कर दी हैं यथा -

"क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?
एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा
उस नयन में बह सकी कब
इस नयन की अश्रुधारा ?
सत्य को मूँदे रहेगी
शब्द की कब तक पिटारी ?
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?" [१]

और -

कितना अकेला आज मैं
संघर्ष में टूटा हुआ,
दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ,
कितना अकेला आज मैं !
कितना अकेला आज मैं ? [२]

---

१ बच्चन - आकुल अन्तर गीत सं० - १०
२ बच्चन - एकान्त संगीत गीत सं० - २०

"कवि चतुर्दिक अवसाद देखता है। इससे निजात पाने के लिये वह सामाजिक शक्तियों अथवा आध्यात्मिक आदर्शों से स्वयं को न जोड़कर भावुकता में ही प्रवेश कर जाता है। इस स्थिति में उसके साथ ईश्वर नहीं है, देवता नहीं है, रूढ़ समाज नहीं है, संस्था नहीं है, इसीलिये वह किसी प्रकार के आश्रय का आभास नहीं पाता। उसे यदि कोई सहारा नज़र आता है तो केवल प्रेयसी से मिलन का; किन्तु वह भी कहाँ हो पाता है ? इसीलिये कवि अपने मन की पीड़ा, असफलता, निराशा को प्रत्यक्ष, बेलौस झेलता हुआ जीवन को असफल और निराधार अनुभव करता है।" [१]

व्यक्तिवादी चेतना अनुभूति की इन वादियों से गुजरती हुई कवि को प्रतीत करा देती है कि जीवन क्षण भंगुर है। पीड़ा के मरुस्थलों में उल्लास के नखलिस्तानों की तालाश करो और यदि वे तुम्हें मिल जायें तो उन्हें जियो, उन्हें प्रयेसी के प्रत्यक्ष संसर्ग अथवा स्मृतिसंचारी से सम्प्राप्य सौंदर्यानुभूति का रसपान करो। कवि के पास एक और भी मार्ग है - जिन्दगी का गम दूर करने के लिये वह हाला का सहारा लेता है। अपनी सौंदर्यानुभूति तथा प्रीति की उत्तेजना को और भी तीव्र करने के लिये तथा अपनी मादकता को और भी विस्तृत करने के लिये वह मधु का आश्रय लेता है-

"करे कोई निन्दा दिन रात
सुयश का पीटे कोई ढोल
किये कानों को अपने बन्द
रही बुलबुल डालों पर बोल [२]

और

हर जिस्वा पर देखी जायेगी मेरी मादक हाला
हर कर में देखा जायेगा मेरे साकी का प्याला,
हर घर में चर्चा अब होगी मेरे मधु विक्रेता की
हर आंगन में गमक उठेगी मेरी सुरभित मधुशाला [३]

---

१ डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६१४
२ मेरी श्रेष्ठ रचनाऐं - पृ०सं०-६० - 'मधुबाला' से उद्धृत
३ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-६३ 'मधुशाला' से उद्धृत

शनैः शनैः यह मधु कवि की आत्मीय परिधि में प्रवेश कर अन्य जीवन सत्यों का प्रतीक बन जाता है। 'मधुशाला' तथा 'मधुबाला' कवि के आत्मीय प्रकोष्ठ में प्रविष्ट होकर, जीवन सत्यों के रूप में ढल कर प्रवाहित होने वाले निष्कर्ष का दस्तावेज हैं।

बच्चन-जैसा कि कहा जा चुका है सौंदर्यानुगत आत्मानुभूति के कवि हैं। धरती और गगन - दोनों को थामे रहने के प्रयास में उनकी सहज आत्मानुभूति आत्मस्पर्शी गहराइयों में प्रवेश की सामर्थ्य रखते हुए भी सांसारिक आवधारणाओं के संयोग के कारण अनभिव्यक्त रह गई है। कवि अपनी बात कहता-कहता उसे 'जनर्लाइज्ड' करने के फेर में बहक सा जाता है। 'निशानिमन्त्रण, 'एकान्त संगीत' तथा 'मिलन यामिनी' के वे गीत जहाँ कवि की निजस्विनी आत्माभिव्यक्ति से सराबोर अति हृदय स्पर्शी हैं, वहीं कहीं-कहीं उपदेशात्मक अवधारणाओं की अयाचित उपस्थिति उनकी अनुभूतिजन्य गरिमा को क्षरित करती है -

प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर !
युद्ध क्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित, अविरल, प्रतिपल,
मनुज-पराजय के स्मारक हैं
मठ, मस्जिद, गिरजा घर
प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर।[1]

बच्चन के कृतित्व को देखकर लगता है कि जहाँ वे सौंदर्यानुभूति से विभोर होकर अपनी रागात्मकता का प्रस्तुतीकरण करते हैं अथवा आत्मानुभूति की धरती पर वेदना की पौध लगाते हैं, वहाँ वे बहुत प्रभावशाली हो उठते हैं, किन्तु जब वे सामाजिक यथार्थ या सामाजिक विसंगतियों के प्रति विद्रोह का शंखनाद करना चाहते हैं तो वह बेसुरा हो जाता है। उनके गीत भाषा की सहजता तथा अनुभूति की निश्च्छलता के कारण गीति काव्य के गरिमामय बिन्दु बन सके हैं, किन्तु कहीं-कहीं उत्तेजना, भाषा के सपाटपन शब्दों, बिम्बों के अपव्यय तथा विस्तार स्फीति के कारण बहुत प्रभावहीन सिद्ध होते हैं।[2]

---

१ बच्चन - एकांत संगीत गीत सं० - १६
२ डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ६१६

उदाहरणार्थ -

जो बीत गई सो बात गई

जो आई नहीं छू पाई नहीं।[1]

इस गीत का प्रारम्भ एक अवधारणा से होता है जिसे स्पष्ट करने के लिये कवि को अनावश्यक रूप से सतही प्रस्तुतीकरण का सहारा लेना पड़ा।

बच्चन पीड़ा की प्रतीति में पारंगत तथा उसकी अभिव्यक्ति में कुशल हैं। उनकी पीड़ा की आर्द्रता से ही बहुधा उनकी गहन चेतना की तहों को चीर कर सौंदर्यानुभूति अकुंरित होती है। आयरलैंड की सूर्यास्त बेला में नारंगी रंग के बादलों से आलोकित क्षितिज को छूते सागर को देखकर भी कवि का सौंदर्यबोध मन की गहन पीड़ा की प्रतीति करा देता है -

सिन्धु का छिछला-छिछला तीर

अकम्पित नील - मुकुर सा नीर।

यहां लगता है कोई छोड़

गया है मन की गहरी पीर[2]

आयरलैंड में ही किलार्नी का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर कवि ने विभोर होकर अपने अन्तस्तल में निगूढ सौंदर्य का चिरचेतन्त प्रवाह इस प्रकार प्रवाहित किया है -

तुम्हारे नील झील से नयन

नीर-निर्झर से लहरे केश

करों में लतरों का लचकाव

करतलों में फूलों का वास

तुम्हारे .... ।[3]

अंत में यह कहना उचित होगा कि बच्चन की कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा ने कुछ अपवादों को छोड़कर अपनी रचनाधर्मिता के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये कि आकाश और धरती तथा भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच एक समन्वय स्थापित हो सका। उनका कृतित्व जिन्दगी से जुड़े सवालों के वाजिब उत्तर को प्रस्तुत करने में समर्थ है। यद्यपि उन्होंने सामाजिक पहचान न मिटने देने की पूरी कोशिश की है, लेकिन वे बहुधा अपनी वैयक्तिक चेतना की अतल गहराइयों में

---

१ बच्चन - बसेरे से दूर - पृष्ठ सं० - १३३
२ बच्चन - बसेरे से दूर - पृष्ठ सं० - ६६
३ बच्चन - बसेरे से दूर - पृष्ठ सं० - १०७

पैठ गये। कवि के पास एक सौंदर्यग्रही मौलिक दृष्टि है, जो जीवन के अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रसंगों में "सुन्दरम्" का साक्षात्कार कर लेती है। विश्व के विविध परिप्रेक्ष्य बच्चन को सौंदर्य सरोवर की उत्ताल लहरों की ओर आकृष्ट करते हैं। यद्यपि उनके रचना संसार में विविध रस उपस्थित हैं किन्तु श्रंगार रस-विशेष रूप से वियोग श्रंगार की कमनीय मधुरिमा, पाठक को सौंदर्यबोध की पीयूष धारा से सराबोर कर देती है। उन्होंने श्रंगार के दोनों पक्षों-संयोग तथा विप्रलम्भ को अपनी लेखनी का आश्रय दिया है। एक ओर बच्चन की मुस्कानों से संयोग श्रंगार का बालारुण अपनी अरुणिमा के साथ उदित होता दृष्टिगोचर होता है, वहीं दूसरी ओर प्रिय के वियोग से व्यथित उनके आँसुओं के रूप में अस्ताचलगामी सूर्य की कारुणिक लालिमा के दर्शन होते हैं।

'बच्चन' अपनी अभिव्यक्ति के प्रति बेहद ईमानदार हैं। उनकी अभिव्यक्ति उनके भोगे यथार्थ का मर्मस्पर्शी प्रस्तुतीकरण है। वे मूलतः कवि हैं, अतः उनका काव्येतर सृजन भी उनकी भाव विह्वलता की रसवन्ती रमणीयता से प्रभावित हुआ है। वे तर्क पूर्ण चेतना के प्रति सजग रहने के उपक्रम में प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। उनकी रचनाओं को पढ़कर यह कहने को जी चाहता है कि "सौंदर्य सृष्टि में नहीं दृष्टि में होता है।" बच्चन ने जीवन और जगत के विविध प्रसंगों और संदर्भों में सौंदर्य का साक्षात्कार किया था, या यों कहें कि उनकी सौंदर्य में डूबी चेतना जीवन और जगत के विविधि प्रंसगों के माध्यम से अभिव्यक्ति हुई है। अन्त में यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बच्चन का सम्पूर्ण रचना संसार उनकी सौंदर्यानुभूति से सराबोर है। अनुकूलता और प्रतिकूलता, सुख और दुख, संयोग और वियोग ये समस्त द्वन्द्वात्मक परिस्थितियाँ उनकी तीव्र सौंदर्यानुभूति को क्षरित, सीमित या समाप्त नहीं कर पाती हैं। सम्पूर्ण प्रकृति उनके प्रियतम की ही अभिव्यक्ति है। उनका 'तुम' प्रकृति में विम्बायित है कि उनके 'तुम' में प्रकृति बिम्बित है, इसका वे निर्णय ही नहीं कर पाते हैं -

> तुम्हें अपनी बाहों में देख
> नहीं कर पाता मैं अनुमान
> प्रकृति में तुम बिम्बित यहँ ओर
> कि तुमसे बिम्बित प्रकृति अशेष।
> तुम्हारे नील झील से नैन
> नील निर्झर से लहरे केश [1]

---

१ बच्चन - बसेरे से दूर - पृष्ठ सं० - १०७

अध्याय - 1

(क) सौंदर्यानुभूति : एक समाकलन - भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टि से

मानव एक चेतन और जिज्ञासु प्राणी है। कूटस्थ चैतन्य की स्वाभाविक संप्रेरणा उसे भावयित्री तथा कारयित्री प्रतिभा की ओर अग्रसर करती है। यह सभी में एक साथ घटित नहीं होता। व्यक्ति के संस्कार, सामर्थ्य, व्यक्तित्व तथा प्रतिभा में अन्तर होने के कारण, सूक्ष्म विश्लेषण के आधार पर ही उसकी अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में अन्तर दृष्टिगोचर होता है। जिज्ञासु होने के कारण उसकी दृष्टि मानवीय जीवन से सम्बद्ध परिपार्श्वों के सत्य को आत्मसात करने की चेष्टा करती है। वह जो भी अनुभव करता है, उसे व्यक्त करना ही चाहता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति में अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की क्षमताऐं अलग-अलग होती हैं। अनुभूति की सौंदर्याग्रही प्रवृत्ति विश्व के विविध क्षेत्रों में प्रकीर्ण 'सुन्दरम्' को खोजकर अन्तश्चेतना से तादात्म्य स्थापित करती है। अपनी भावयित्री प्रतिभा के कारण वह जिज्ञासु होता है। यह कारयित्री प्रतिभा ही है जो हमें सृजनधर्मी बनाती है। इन दोनों प्रतिभाओं के योग से सृजन की प्रक्रिया, कल्पना शक्ति का सहयोग लेती हुई सृजनात्मक ध्रुवान्त तक पहुँचने की चेष्टा करती है। प्रातः काल प्राची से उदित हो रहे अभिराम बालारुण को असंख्य लोग निहारते हैं। उसके मनोग्राही सौंदर्य से अभिभूत भी होते हैं, किन्तु सब में बालारुण के सौंदर्यानुभूति की क्षमता नहीं होती है। जिनमें यह क्षमता है भी, उनमें उसके अभिव्यक्ति की क्षमता अलग-अलग होती है। इसका कारण है कि प्रत्येक दृश्य दृष्टा की आत्मप्रत्यात्मकता से अनुप्राणित होता है और उस दृश्य की अभिव्यक्ति में दृष्टा की आत्माभिव्यक्ति का सम्मिश्रण रहता है।

"मानव सौंदर्य प्रेमी है; उसकी चेतना किसी असुन्दर को अभिनन्दित नहीं करती। जब भी उसका सौंदर्य से साक्षात्कार होता है, तो मानवीय स्वभाव के कारण वह उसकी अभिव्यक्ति के लिये तड़प उठता है। तब वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार उस सौंदर्य को अभिव्यक्त करता है। वस्तुतः यह प्रक्रिया व्यक्ति के निजत्व की संकीर्णता को चीरकर लोक से जा जुड़ने की मांगालिक प्रक्रिया का परिणाम है अर्थात् व्यक्ति की सौंदर्यानुभूति मात्र उसी को आनन्दित करने तक सीमित नहीं रही, प्रत्युत लोकार्पित होकर सौंदर्यानुभूति के आनन्द को बाँटकर उपभोग करने की कल्याणमयी

प्रवृत्ति है। व्यक्ति की सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति को कला की संज्ञा दी गई है। कला और सौंदर्य इतने सम्बद्ध माने जाते हैं कि उनमें कोई विभाजन रेखा खींचना असम्भव है। जब मानव अपनी कृति में सौंदर्य का योग करता है तभी वह कृति 'कला' कहलाने लगती है। वस्तुतः 'कला' का उद्‌गम सौंदर्य की मूल प्रेरणा से होता है और इससे कलाकार को आनन्द की अनुभूति होती है और यही आनन्द कला का मुख्य उद्देश्य है।'' [1]

जो कलाकार अपनी सौंदर्यानुभूति को जितनी प्रभविष्णुता और स्पष्टता से अभिव्यक्त करता है, वह उतना ही बड़ा कलाकार होता है। इस प्रक्रिया में भौतिक उपादानों का जितना कम प्रयोग किया गया हो, वह कला उतनी ही श्रेष्ठ है। तीव्र सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति में यदि थोड़ा भी विलम्ब हुआ तो वह सौंदर्यानुभवी की चेतना में जिस रूप से प्रादुर्भूत हुआ था, उस रूप में वह लोकार्पित नहीं हो सकेगी। यद्यपि यह भी सच है कि सूक्ष्म अनुभूतियों की ज्यों की त्यों अभिव्यक्ति अति दुष्कर है तो भी कलाकार स्वानुभूत सौंदर्यानुभूति को ज्यों की त्यों व्यक्त करने की चेष्टा करता है। अपने इस प्रयास में वह जितना सफल होता है, वह उतना ही बड़ा कलाकार होता है। यहाँ इस बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि कलाकार के द्वारा अभिव्यक्त कला का साक्षात्कार करके कलाकार की सौंदर्यानुभूति को उसी रूप में आत्मसात करने की क्षमता सभी भाविकों में समान रूप से नहीं होती। इसीलिये एक ही कलाकृति का आनन्द उस कला का भोक्ता समान रूप से नहीं कर पाता। कलाभोक्ताओं के लिये कलाकृति की ग्राह्यता भी कला की श्रेष्ठता का मापदण्ड बनती है।

सौंदर्यप्रियता के कारण मानव अपने सम्पूर्ण परिवेश को सौंदर्य मण्डित देखना चाहता है। उसकी यह प्रवृत्ति कलाओं की जननी है। संचेतना की सूक्ष्म प्रतीतियों में सौंदर्य के स्पन्दन उसे आत्मानुभूतियों से सराबोर कर देते हैं। ऐसी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को ललित कला कहा जाता है।

''यूनानी शब्द 'एस्थेसिस' से उदभूत अग्रेंजी 'एस्थेटिक' शब्द ही हिन्दी में सुन्दर है। 'सुन्दर' शब्द की उत्पत्ति 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'उन्द' धातु में 'अरन' प्रत्यय मिलाकार बनाने से अर्थ होता है जो अन्तः सत्ता को भली भांति आर्द्र करे।'' [2]

वस्तुतः हमारी अन्तश्चेतना पर पड़ने वाला सुखकर प्रभाव ही सुन्दर है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जब ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हमारी अन्तश्चेतना को सुखमय प्रतीतियों से विभोर कर देते हैं, तब अन्तश्चेतना की तदाकार परिणति की ओर उन्मुख होती हुई अवस्था, सौंदर्यानुभूति

---

(१) साहित्यिक निबन्ध - राजनाथ शर्मा पृ०सं० ३२४

(२) डा० विश्वनाथ प्रसाद - अष्ट छाप के कवियों की सौंदर्यानुभूति पृ०सं० २

है। सुन्दर वस्तु की आनन्दमय अनुभूति सौंदर्यानुभूति है। सौंदर्य सारी इन्द्रियों का विषय बनकर भाव में परिणत हो जाता है। क्रमशः सौंदर्य का वह रूप तो मानस से हट जाता है और उसे संश्लिष्ट रूप में प्राप्त होने वाला सौन्दर्य-बोध अनुभूति के रूप में विद्यमान रहता है, यह ही सौंदर्यानुभूति है। सौंदर्य, जिसकी अनुभूति चेतना को उज्जवल, उल्लसित तथा आनन्दित कर देती है[1] वस्तुतः बहुआयामी शब्द है।

छिटक छिटक उल्लास विहँस आनन्दित करता,
जब सौंदर्य चेतना में ज्योतिर्विहार करता है।[२]

भारतीय तथा पाश्चात्य मनीषा ने सौंदर्य को अति सूक्ष्म दृष्टि से निहाराने की चेष्टा की है। निष्कर्षतः सौंदर्य की व्याप्ति परमाणु से ब्रह्माण्ड तक, स्थूल से सूक्ष्म तक, वस्तु से व्यक्ति तक, विषय से अभिव्यक्ति तक, अनुभूति से प्रतीति तक, यहाँ तक कि क्षणिक से शाश्वत तक विद्यमान है। पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्रियों ने सौंदर्य को समग्र कलाओं का प्राणतत्व माना तो भारतीय चिन्तकों ने भी रस ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति तथा औचित्य के प्रकारान्तर से सौंदर्य को ही शोभा, चारुता तथा ऋजुता के नाम से काव्य की आत्मा स्वीकार किया।[३]

सौंदर्य को परिभाषाबद्ध करने की चेष्टा करते मनीषी दो निकायों में बाटें गये हैं -

(१) भाववादी निकाय

(२) भौतिकवादी निकाय

''भाववादी सौंदर्य शास्त्रियों के अनुसार-सौंदर्य का सम्बन्ध मनुष्य की अन्तश्चेतना से है और उसका कोई वस्तुगत आधार नहीं होता। इस मत के अनुसार, सौंदर्य दृश्य में नहीं दृष्टि में होता है।

भौतिकवादी सौंदर्य शास्त्री इसके विपरीत यह मानते हैं कि ''सौंदर्य कोई अलौकिक पदार्थ नहीं है, उसका सम्बन्ध एक ओर व्यक्ति से है और दूसरी ओर वस्तु से है। सौंदर्य की अनुभूति में, आत्मपरक तत्व का बहुत महत्व है। यह इससे प्रमाणित है कि यह अनुभूति क्रमशः बदलती रहती है, दूसरी ओर सौंदर्य का वस्तु से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उसके बिना उसका अस्तित्व सम्भव नहीं इस मत के अनुसार सुन्दर वस्तु अपने अस्तित्व के लिये व्यक्ति की अनुभूति पर निर्भर नहीं होती यह सौंदर्य के वस्तुगत आधार पर अकाट्य प्रमाण है।''[४]

---

१. कामायिनी - जयशंकर प्रसाद
२. अन्तर्यात्रा - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी - पृ०सं० ४१
३. सूर और तुलसी की सौंदर्य भावना - भूमिका से - डॉ० बद्री नारायण श्रोत्रिय
४. प्रेम चन्द्र का सौंदर्य शास्त्र - पृ०सं० ६ - नन्द किशोर नव

"अरस्तु ने विशेष रूप से 'अनुपात' शब्द पर जोर देते हुए कहा था कि 'अनुपात' में ही सौंदर्य निहित है। अरस्तु के अनुसार 'अनुपात' का आशय है वस्तु का न बड़ा होना, न ही बहुत छोटा होना।" [१]

यूरोपियन पुनर्जागरण के सौंदर्य शास्त्रियों ने "लय समानुपातिकता अंश और सम्पूर्णता के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध तथा वैविध्य में अनृत सौंदर्य का प्रतिमान निरूपित किया।" [२]

यह समस्त प्रतिमान वस्तु से सम्बन्धित हैं। इन अवधारणाओं की ओर विश्व के सौंदर्यशास्त्रियों की दृष्टि जानी स्वाभाविक है। यह सहज ही दृष्टिगम्य हो सका कि वस्तु केन्द्रित इन प्रतिमानों की अवधारणा इसीलिये त्रुटिपूर्ण है कि उनमें कलाकृति के वाह्य रूप को अति महत्व दिया गया है। यहाँ तक कि 'वाह्य रूप' में ही सौंदर्य का सार-तत्व समाहित देखा गया है। स्वभावतः भाववादी सौंदर्यशस्त्रियों ने उक्त प्रतिमानों को यह कह कर खारिज कर दिया कि सौंदर्य गणितीय अनुपातों और नुस्खों मे नहीं हो सकता। भाववादी सौंदर्यशास्त्रियों ने बल पूर्वक स्थापना की कि सौंदर्य को बुद्धि से मापा या व्याख्यायित नहीं किया जा सकता और सौंदर्य वस्तुतः अभिव्यञ्जना है। अभिव्यञ्जना से इन विद्वानों का तात्पर्य अन्तश्चेतना की अभिव्यक्ति से था। वही चीज सुन्दर हो सकती है जो अन्तः चैतन्य तत्व की अभिव्यञ्जना करे। यदि कोई कलाकृति अन्तर्चैतन्य तत्व की अभिव्यञ्जना नहीं करती तो दूसरी दृष्टियों से सुन्दर होते हुए भी वह उनकी दृष्टि से सुन्दर नहीं होगी। इस अन्तर्चैतन्यीय तत्व जिसे दूरागत संदर्भ में अध्यात्मिक तत्व भी कहा गया - की अभिव्यञ्जना को भाववादी सौंदर्यशास्त्रियों ने मूल्य के रूप में परिभषित किया और कहा कि कला इस मूल्य की वाहिका होती है।" [३]

वस्तुवादी और भाववादी सौंदर्यशास्त्रियों की अपनी अवधारणायें तथा अपनी स्थापनायें है। निष्कर्ष तक पहुँचने के लिये हमें वाद के कटघरे से मुक्त होकर सहज अभिज्ञा का स्वागत करना होगा। वस्तुतः ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसमें सौंदर्यबोध न हो। समाज में सामान्य (मीडियम) तथा प्रतिभावान (जीनियस) दोनों प्रकार के व्यक्ति निवास करते हैं। कलाकार प्रतिभावान कोटि में आता है। उसकी प्रतिभा युग दृष्टा और युग सृष्टा होने का दायित्व पूरा करती है। साहित्यकार में

---

१ समीक्षा क्र पाश्चात्य स्वरूप - पृ०सं० १०४ - डॉ० एन० डी० समाधिया
२ समीक्षा क्र पाश्चात्य स्वरूप - पृ०सं० ६७ - डॉ० एन०डी० समाधिया
३ हिन्दी साहित्य में सौंदर्य विधान - पृ०सं० ५ - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी

संवेदनाशीलता अधिक होती है,- जिसके बल पर वह जागतिक संदर्भो में प्रतिभाषित नामरूप की परिसीमाओं से परे जाकर अनन्त सम्भावनाओं के क्षितिज को छूता है। साहित्यकार की व्यक्तिगत जीवनशैली, संस्कार, आचरण व उसके सामाजिक परिवेश के सहयोग से उसकी आत्माभिव्यक्ति का रूप निर्धारित होता है। यह आत्माभिव्यक्ति आत्मानुभूति पर आधारित है अर्थात् आत्मेतर वस्तुओं, दृश्यों व गतिविधियों के आत्मीकरण के बाद साहित्यकार अपनी प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त करने की ओर प्रवृत्त होता है अर्थात् वस्तु जगत के प्रति उसकी निजी प्रतिक्रिया ही आत्माभिव्यक्ति के रूप में उपस्थित होती है। वस्तु जगत से पूर्णरूपेण एकात्म हो पाने के बाद भी कुछ शेष रह जाता है, जो इस एकात्म भाव को रचता है। यह साहित्यकार की निजी दृष्टि है। यही साहित्यकार के 'आत्म' का प्रतिनिधि है। सभी व्यक्ति जीवनजगत को देखते हैं, भोगते हैं और अवधि पूरी होने पर शेष हो जाते हैं। यह क्रम तो अनादि अनन्त है। वही आकाश, धरती, फूल-फल, वृक्ष, नदी, नाले, उसी लोक जीवन के चिरपरिचित व्यापार हमारे आस-पास गतिमान हैं-किन्तु साहित्यकार दिनानुदित की घटनाओं, दृश्यों तथा चिरपरिचित प्रत्ययों को ऐसे रूप में प्रस्तुत कर देता है कि वे हमारे लिये नये और अलौकिक हो उठते हैं। यथा नारी के विविधि दुःखमय रूप दृष्टि से गुजरते रहते हैं तथापि कर्ण के पास कुन्ती का नारी रूप कवि की अन्तश्चेतना प्रस्रवित सर्वेदनाओं से भीगकर इतना मर्मस्पर्शी हो सका है तो इसका प्रधान कारण कवि की निजस्विनी दृष्टि है -

छाया सी दीप शिखा की,
अपने में ही थर्राती।
डगमग कदमों से चल कर,
साक्षात् ग्लानि-सी आती।
उस क्लांस विवर्ण मूर्ति में,
वेदन शोर करती थी।
उन आँखों की कोरो में,
ममता हिलोर भरती थी।[1]

कोई अन्य कवि इसे कुछ अलग प्रकार से व्यक्त करता क्योंकि सबकी निजास्विनी दृष्टि अलग होती है। साहित्य में ऐसे असंख्य उदाहरण हैं, किन्तु उसे रचने की प्रतिभा आचार्य

---

१ कालजयी - पृ०सं० १० - डा० दिनेश चन्द्र द्विवेदी

अभिनव गुप्त के मातानुसार - "प्रत्येक जीव में होती है, किन्तु उस पर अज्ञान का आवरण चढ़ा रहता है। रत्न जिस प्रकार धूल से ढका रहता है और धूल हटते ही जगमगा उठता है, उसी प्रकार प्रतिभा भी ऊपर का आवरण हटते ही जगमगा उठती है। जब व्यक्ति की प्रतिभा अपने स्थूल आवरणों का भेदन करने लगती है, तब वह अन्नमय कोष की ओर बढ़कर प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय, और आनन्दमय कोष की ओर बढ़ने लगती है और तब वह व्यक्ति कवि बनने लगता है।" [१]

डॉ० देशराज-"इसी को कवि की रहस्य दर्शन शक्ति एवं पर-काय-प्रवेश की शक्ति मानते हैं" [२]

डॉ० जगदीश गुप्त- "इसे ऋषि दृष्टि कहते हैं।" [३]

"यह दृष्टि की निजस्विता ही कवित्त्व में मौलिकता बनकर उतरती है। दृष्टि की निजस्विता ही कलाकार का वैशिष्ट्स और सर्वस्व है अतः यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि कवि के निजी परिवेश, उसके संस्कार, उसके चेतन, अचेतन मानस की संरचना, उसके दैनन्दिनि अनुभवों और उनसे गुजरते क्षणानुक्षण निर्मित संशोधित होते जाते व्यक्तित्व से निस्सृत यह दृष्टि की निजस्विता या मौलिकता या आत्माभिव्यक्ति एक ऐसा बिन्दु है-जहाँ आकर समानान्तर चलते कवि के वाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व को सौंदर्यानुभूति का धरातल प्राप्त हो जाता है। कविता शब्द निर्मित है और सृजनात्मक शब्द के माध्यम से आत्मा के गहरे निस्पन्दन पाठकों की चेतना में आनन्द का रूप लेकर प्रादुर्भूत हो जाते है।" [४]

"सौंदर्य के सम्बन्ध में वस्तुपरकता और भावपरकता के सांचे के आधार पर चिन्तन करने की बजाय यदि हम वाद मुक्त दृष्टि से देखें तो हमें प्रत्येक कला 'सत्य', 'शिव', 'सुन्दर' का समन्वय प्रतीत होगी। 'सत्यं', 'शिवं' और 'सुन्दरं' की पारस्परिकता को ठीक से पहचानने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि इनके बीच अभेदात्मक सम्बन्ध है। बिना शिव (कल्याण) के 'सत्य' सत्ताच्युत हो जाता है, और जो शिव है, वह सुन्दर है। प्रकारान्तर से मानवीय परिप्रेक्ष्य में सौंदर्य क सम्बन्ध में ऐसी विचारधारा को मान्यता मिलनी चाहिए, जो सत्याधारित, शिव पोषित तथा सौंदर्य संश्लिष्ट हो। प्रत्येक व्यक्ति वस्तु एवं स्थान सुन्दर है, जिसमें हम अपनी मूल्य धर्मी मान्यताओं के अनुरूप जीवन के वांछनीय रूप का दर्शन करते हैं।" [५]

---

१ छायावाद में आत्माभिव्यक्ति पृ०सं० ४१-४२ - डॉ० शशि मुदिराज
२ रचना प्रक्रिया - पृ०सं० ४७ - डॉ० देशराज
३ नई कविता - स्वरूप और समस्यायें - पृ०सं० ६४ - डॉ० जगदीश गुप्त
४ कवि और कृति - पृ०सं० ४४ - शंकर जी करूप
५ साहित्य में सौंदर्य विधान - पृ०सं० १२२ - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी

"यहाँ यह विचारणीय है कि सौंदर्य को जानने के लिये कौन से मानदण्ड हैं या हो सकते हैं? यह प्रश्न चिन्तन का विषय रहा है कि सौंदर्य अनुभव और संदर्शन (एस्थेटिक्स)के रूप में लिया जाये अथवा मूल्यांकन और अलोचना के रूप में। पहले रूप में स्वीकार करने वाले विचारक सौंदर्य वादी होते गये लेकिन पहले और दूसरे दोनों रूपों को संयुक्त रूप से ग्रहण करने वाले विचारक सौंदर्य-बोध-शास्त्र को सही सन्दर्भ दे सके- पहले साहित्य और कलाओं के कान्त सहयोग का, तदुपरान्त कला साहित्य और जीवन की द्वन्द्वात्मक एकता का। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब कलाओं का अनुशीलन दार्शनिकों ने किया तब वह 'सौंदर्यबोध शास्त्र' हुआ, जब आलोचकों ने किया तब 'समालोचना' हुआ, जब कलाकारों और कारीगरों ने किया तब 'कला कौशल' बना।" [१]

"पंच ज्ञानेन्द्रियों के सन्दर्भ में आकर पंच तन्मात्रायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की सुखानुभूति कराती हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों के स्वामित्व से सम्पन्न व्यक्ति के बौद्धिक स्तर पर निर्भर है कि इन इन्द्रियों के सम्पर्क में आई तन्मात्रायें किस स्तर तक उसकी चेतना को अभिभूत कर सकीं। व्यक्ति की चेतना सजगता, एकाग्रता तथा ग्राह्य शक्ति के आधार पर ही सुखानुभूति का मल्यांकन किया जा सकता है। इस सुखानुभूति की आकस्मिक अनुभूति के बजाय इसकी गम्भीर प्रतीति की प्रयोजनता ऐन्द्रिक सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में सुख बोध के विविध धरातल सृजित कर सकी, जो कालान्तर में विभिन्न कलाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वैसे तो प्रत्येक कला सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति ही है।" [२]

"मानवता के आदिकाल से ही उसने अपने संस्कार वृत्ति तथा रूचि के अनुसार विश्व में सर्वत्र विकीर्ण सुन्दरम् का साक्षात्कार किया होगा और उसके अनुभवन से उसकी हृदयतन्त्री के तारों में मधुर अनुरणन उत्पन्न हुआ होगा और उससे अपनी सौंदर्यानुभूति को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया होगा। यह परम्परा अद्यापि अविच्छिन्न रूप से चलती जा रही है। ऋग्वेद में 'कवि को' 'ऋषि', 'मुनि', 'विप्र' प्रभृत अभिधाओं से अभिहित किया गया है और सभी अवस्थाओं में उससे ऐसे सम्वेदनशील व्यक्ति का बोध किया गया है जो किसी आन्तरिक प्रेरणा अथवा आन्तरिक प्रफुल्लता अथवा उल्लास की भावना से अभिभूत है" [३]

ऋग्वेद में भी - "कवि के अभ्यान्तर प्रेरणा से प्रसूत अभिव्यक्ति के लिये 'मन्त्र' शब्द प्रयुक्त हुआ हैं।" [४]

---

१ आयातो सौंदर्य जिज्ञासा - पृ०सं० ८ - रमेश कुन्तल मेघ
२ साहित्य और सौंदर्य विधान - पृ०सं० ४६ - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
३ दृष्टव्य मोनिप विलियम्स संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी पृ०सं० - २२६, ८३२, ६७२

महर्षि विश्वामित्र ने - "हृदय में स्फुरित होने वाली ज्योति (अन्तः प्रेरणा) को ही 'याति' अर्थात् ऋचा का आधार बताया है।" [१]

ऋग्वेद के ऋषि - "अपनी आन्तरिक स्फुरणाओं से शासित होकर सौंदर्य का दर्शन तथा उसकी अभिव्यक्ति करते थे। प्रो०जी०एस० शास्त्री ने आंग्ल रोमान्टिक समीक्षक बाल्टर पेंटर की रोमांटिक काव्यानुभूति विषयक स्थापना का उल्लेख करते हुए कहा कि - "ऋग्वेद के कवि सर्वत्र सौंदर्य की तलाश करते और पाते थे। उन्हें सम्पूर्ण गोचर जगत चिरन्तन भाव से नवीन एवं ताजा प्रतिभाषित होता था। यही वैदिक ऋषियों से उद्योतित होता है, जिसमें सौंदर्य को एक अपरिचित वैचित्र्य से संयुक्त समझा गया है। [२]

प्रो०जी०एस० शास्त्री The Regvedic theory of poetry procudings and tranjections all India oriental confrance 12th session B.H.U. (21)

वैदिक वाङ्मय में सौंदर्य के विपुल चित्र देखे जा सकते है। [३]

वैदिक कवियों की सौंदर्यप्रियता के अनेक उदाहरण वेदों में अनुस्यूत हैं। ऋषि गण ज्योति, प्रकाश अथवा कान्ति के प्रति स्थिर आर्कषण तथा सौंदर्य के मंगलमय स्वरूप के प्रति आग्रही थे। 'ज्योति' उनके समीप मुख्यतः नेत्र सापेक्ष रही है। 'चक्षुरेन्द्रिय' का विषय रही है। इसके 'वर्ण' अथवा 'रंग' के विषय में उनकी उतनी ही स्थिर प्रियता 'सुवर्ण' एवं 'अरूण' के प्रति परिलक्षित होती है।

अर्थवर्वेद में पृथ्वी की महिमा का बखान करते हुए उसे 'स्वर्णिम' वक्ष वाली कहा गया है।

'तस्यै हिरण्य वक्षसे पृथिव्या अकरं नमः' [४]

"इन्द्र, अग्नि, मरूत, ऊषा इत्यादि सभी प्रसिद्ध देवता लाल अथवा स्वर्ण वर्ण के कहे गये है। हिरर्ण्येप, हिरण्याशय, हिरण्यपाणि, हिरण्याक्ष, हिरण्यनेमय प्रभृत का प्रयोग प्रायः होता है। सोने की किरणें, सोने का रथ, सोने का कवच इत्यादि का उल्लेख भी विभिन्न प्रसंगों में हुआ है।" [५]

---

४ ऋग्वेद पृ०सं० २८०

१ ऋग्वेद ३/२६/८

२ 12th session – B.H.U.

३ ऋग्वेद - १/५८/४, ७/३/६, १/३५/४, १/६४/३, १/१५४/४, १०/७५/३ इत्यादि

४ अथर्ववेद - ११/१/२६

५ ऋग्वेद- १/७/२, १/६/२, १/६/१, १/१४/१२, १/५७/२, १/२२/५, १/२५/७३, १/३५/६-१०, १/१०५/१, २/२७/६, २/३४/३, ३/६/१०, १०/८५/२०, ७/७५/६, ६/६५/२, ६/६६/२, ६/५६/३ इत्यादि।

महाकाव्य काल में वैदिक युग के सौंदर्य वर्णन के प्राकृतिक परिदृश्यों के प्रति बहुधा तथा प्रायः अभिकेन्द्रण के स्थान पर प्रकृति के अतिरिक्त मानवीय सौंदर्य का प्रचुर तथा प्रभावशाली वर्णन हुआ है।" [1]

वेद की तुलना में रामायण का सौंदर्य वर्णन स्वभावतः ललित एवं काव्यात्मक है। यद्यपि प्रकृति के उद्दीपक स्वरूप का भी वर्णन उसमें उपलब्ध है, तथापि विशुद्ध आलम्बन रूप में प्रकृतिगत के वर्णन सौंदर्य के चित्रण में कवि को विशेष आनन्द मिला है। बाल्मीकि के वर्णन की सामान्य प्रवृत्ति यर्थाथवादी है, जो फूलों, फलों, पक्षियों, कीचड़ भरे पथों, जलार्द्र पवनों इत्यादि के वर्णन में स्फुट रूप से दिखाई पड़ती है। प्रायः वैदिक ऋषियों के समान बाल्मीकि का सौंदर्यबोध व्यापक है और उसमें प्रकृति के उग्र एवं भयावह स्वरूपों का भी समावेश हुआ है। [2]

'चारु', 'रमणीय' तथा 'अभिराम', जैसे शब्दों का प्रयोग वस्तुतः बाल्मीकि ने सौंदर्यवाची शब्दों के रूप में ही किया है।' [3]

महाभारत में वेदव्यास ने प्रकृति तथा मानव के सम्भावित सौंदर्य के चित्ताकर्षक चिंत्राकन किये हैं। सौंदर्यबोधक शब्दों के रूप में 'कान्त', 'शोभन', 'रुचिर', 'रम्य', 'सुरूप', 'सुभग', 'मनोहर' आदि का प्रयोग मिलता है। [4]

परवर्ती संस्कृत, पाली, अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्य के विभिन्न काल के कवियों ने सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के निरन्तर प्रयत्न किये हैं। कालसंवाह के साथ जैवकीय परिस्थितियों में आए अन्तर के कारण सोच तथा ग्रन्थियों में अन्तर आना स्वाभाविक है। सौंदर्य बोध भी आग्रह मूलक स्वीकृतियों के आधार पर प्रतिष्ठित हुआ। हिरण का बच्चा सुन्दर तथा सुअर का बच्चा असुन्दर समझा जाना इसी आग्रहमूलकता का परिणाम है। वस्तुतः प्राकृतिक सौंदर्य सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, रुचियों तथा स्वीकृतियों से प्रभावित हुआ है। इतिहास के अनादि क्रम में मनुष्य ने पहले प्रकृति को अपनी ही अतिमानवीय तथा अलौकिक शक्तियों के रूप में परखा और वरूण, अग्नि, इन्द्र, अदिति, ऊषा, मित्र, सूर्य, मरूत, गंगा, चन्द्र, पूषण आदि को दैवीय रूप में देखा। इसके बाद सामाजिक उन्नति के साथ उसने प्रकृति के पूर्व अज्ञात रहत्यात्मक सूत्रों को समझ

---

१ साहित्य में सौंदर्य विधान - पृ०सं० १४ - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी

२ रामायण-बाल्मीकि - युद्धकाण्ड - ४/११५/२४

३ रामायण बाल्मीकि - ५/८/८१, ५/२८/६५, २/५४/४१

४ महाभारत वनपर्व ४५/१२-१२३/३, उद्योग पर्व ८८/१२-१००/१६, भीष्म पर्व ६/२४, उद्योग पर्व ८८/१२, अनुशासन पर्व १०/१०, ११/५, वन पर्व १४५/४५, ५३/१४

लिया। इस प्रक्रिया में अपने श्रम के द्वारा उसने प्राकृतिक दशाओं को बदला और प्राकृतिक सौंदर्य सम्बन्धी अपनी मनोवृत्तियों को भी बदला। विज्ञान की प्रगति ने समाज की उन्नति को क्रान्तिकारी मंजिले प्रदान कीं। इन क्रान्तियों ने प्रकृति पर उल्लेखनीय उपलब्धियां प्राप्त कीं और उनके अनुरूप प्रत्यक्ष परोक्ष ढंग से प्राकृतिक सौंदर्यबोध भी बदले हैं। पहले जो वस्तुऐं प्राकृतिक सौंदर्य वाली थीं, उनका स्थान दूसरी वस्तुओं ने ले लिया। सारांश यह है कि ज्यों-ज्यों या जितनी सामाजिक उन्नति एवं विकसित आत्मगत दशा के अनुरूप कोई प्राकृतिक वस्तु कम या अधिक मानवी कृति प्रकृति में रूपान्तरित होती गई, त्यों-त्यों वह विशिष्ट सुन्दर होती गई। वेदों में प्रकृति सौंदर्य, कलिदास के ऋतुसंहार में प्रकृति सौंदर्य, तुलसीदास की कृतियों में प्रकृति सौंदर्य, प्रसाद, पंत, निराला में प्रकृति सौंदर्य तथा अज्ञेय और नरेश मेहता में प्रकृति सौंदर्य उत्तरोत्तर परिवर्तित रूप में दृष्टिगोचर होता है।

भारतीय दृष्टिकोण

काल संवाह की अपरमिता के परिप्रेक्ष्य में अविशिष्ट एवं उपलब्ध तथ्यों के आधार पर यह सहज ही ज्ञेय है कि भारतीय मनीषा ने ऋतम्भरा प्रज्ञा से प्रतिष्ठित विपश्चित मति के द्वारा ज्ञान के गम्भीर अवगाहन तथा प्रभावशाली निष्कर्षो के उद्‌घाटन में उल्लेखनीय सफलतायें प्राप्त की हैं। भारतीय ऋषियों और मुनियों का चिन्तन-प्रवाह भारतीय सोच की दिशा निर्धारण में सदा ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। भारतीय सामाजिकता व्यक्तिनिष्ठ सीमितता का प्रागैतिहासिक काल में ही अतिक्रमण कर गयी थी और व्यक्ति की तुलना में समष्टि की महिमा सतत् प्रतिष्ठित की गई। व्यक्ति स्वयं के प्रति समर्पित होने के बजाय 'ममेतर' के प्रति समर्पित हो; ऐसे सिद्धान्त को व्यवहार पूर्वक जीवन में उतारने की प्रतिबद्धता से भारतीयता युगों पहले गौरवान्वित हो चुकी थी।[1]

अपने से बड़ा कुछ जानना और उसके लिये बड़े से बड़ा बलिदान करने का भाव मूल्यात्मक समाज की नींव का पत्थर है। योग सूत्र में सत्य, अहिंसा, आस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य ऐसे मूल्य हैं, जिन्हे आत्मसात करने वाला समाज मानवता का आदर्श कहा जा सकता है। व्यक्तिगत धरातल पर सत्य, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, जैसे नियम व्यक्ति को इस योग्य बनाते हैं कि वह मूल्यवादी समाज की रचना में योगदान दे सके। इस तरह की सैद्धान्तिकता और व्यावहारिकता भारतीय जीवन की गहराइयों में कितनी सहजता से प्रवेश कर गई कि उसका परिणाम इस विचारधारा के रूप में दृष्टिगोचर हुआ -

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
माकश्चित् दुःख भागभवेत।[2]

तथा

अयं निजः परोवेति
गणना लघुचेतिसाम्
उदार चरितानाम् तु
वसुधैव कुटुम्बकम्।।[3]

---

१ कविता का सृजन और मूल्यांकन - पृ०सं० १६४ - डॉ० सुधेश
२ 'हिन्दुच्व मनीषा के विविध आयाम' से उद्धृत - डॉ० वेद प्रकाश रोहित - पृ०सं० - २७५
३ 'हिन्दुच्व मनीषा के विविध आयाम' से उद्धृत - डॉ० वेद प्रकाश रोहित - पृ०सं० - २७५

भारतीय चेतना को सम्यक् समझने के लिये ऐसी अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता है, जिसका विस्तार लौकिकता से अलौकिकता की ओर है। अन्तर्दृष्टि वस्तुतः लौकिक चेतना से उतनी सम्बद्ध नहीं है जितनी प्रतीत होती है। यदि इसका सम्बन्ध लौकिकचेतना से दृष्टिगोचर होता भी है, तो बस यह इतना ही है कि लौकिकचेतना का प्रारम्भिक प्रयोग धीरे-धीरे ऊर्जा का ऊर्ध्वाकर्षण इस रूप में किया जाय कि व्यष्टि की सीमाऐं समष्टि में पसर जायें। भारतीय जीवन की प्रत्येक धारा इसी सिद्धान्त से प्राणवती है। सौंदर्य के परिप्रेक्ष्य में भारतीय मनीषा ने सैद्धान्तिक धरातल पर सौंदर्य को मात्र सतही दृष्टि से नहीं देखा। जो सौंदर्य सत्य को नहीं सह सकता, जो सौन्दर्य शिव संयुक्त नहीं, वह विश्व के किसी भी अंचल में सौंदर्य बना रहे, लेकिन भारतीय दृष्टिकोण से वह सुन्दर नहीं हो सकता। वस्तुतः भारतीय अभिमत दार्शनिक दृष्टिकोण रखते हुए भी आध्यात्मिक मान्यताओं के प्रति समर्पित है। भारतीय संस्कृति की आधार शिला है सत्य। जो सत्य नहीं है वह हमें संस्कारवान नहीं बना सकता। संस्कृति की परिपक्वता तो उसकी अभिव्यक्ति, उसकी विजय से प्रमाणित होती है। सत्य का अस्तित्व है - यह प्रतीत कैसे हो ! भारतीय मनीषा ने सत्य की प्रतीति का माध्यम शिवत्त्व को चुना और पाया कि वह है इसका आभास, इसका अनुभव व इसकी अनुभूति तभी होगी जब वह शिव रूप में स्वयं को प्रकट करेगा। जब तक सत्य स्वयं को सर्वकल्याण के रूप में अवतरित नहीं करता तब तक सत्य की सत्ता अदृश्य-सी रहेगी। भावगत सत्ता अर्थात् ब्रह्म की सर्वाधिक आर्कषक विभूति है, तो वह है - सौंदर्य। वस्तुतः जो 'सत्य' है, जो 'शिव' है, वह 'सुन्दर' भी है। भारतीय मनीषा ने सौंदर्य की इसी रूप में उपासना की है। उसने कण-कण में अद्भुत 'सुन्दरम्' के दर्शन किये हैं। 'सत्य' जहाँ भारतीय संस्कृति का कारण रूप, 'शिव' उसका सूक्ष्म रूप तथा 'सुन्दरम' उसका स्थूल रूप होता है। भारतीय सिद्धान्त के अनुसार सौंदर्य स्वयं में सत्य से पृथक कोई सत्ता नहीं है। इसी प्रकार सौंदर्य को शिव से भी पृथक नहीं किया जा सकता है। 'शिवम्' और 'सुन्दरम्' वास्तव में सत्य की ही अभिव्यक्ति हैं। सत्य के अभाव में न तो शिव ही हो सकता है और न ही सुन्दर। यदि थोड़ा और गहराई में झांकें तो भारतीय मनीषा की अनुभूति केवल यही है कि 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' तक ही सत्ता के तीन रूप हैं। '

चूंकि सौंदर्य 'सत्य' व 'शिव' का सम्वाहक है क्योंकि कारण और सूक्ष्म शरीर अदृश्य रहकर स्थूल शरीर के माध्यम से अपनी सत्ता प्रकट करते है- इसीलिये सत्य और शिव की

१ भारतीय संस्कृति - नरेन्द्र मोहन पृ०सं० ३५-८३

तीव्रानुभूति सुन्दरम् के रूप में अभिव्यक्त होकर कला की संज्ञा से प्रतिष्ठित होती है। कुछ अपवादों को छोड़कर भारतीय कला साधना सुन्दरम् के माध्यम से सत्य और शिव की अभ्यर्थना-पद्धति है। रीतिकाल जैसे कतिपय कालखण्डों के बीच से भारतीय (हिन्दी) साहित्य को गुजरना पड़ा है, जहाँ सत्य और शिव को नकार कर मात्र सुन्दरम् की निष्प्राण साधना की गई है। जहाँ तक कला के सम्बन्ध में भारतीय अभिमत का प्रश्न है- 'सत्य' और 'शिव' का प्रवाह 'सुन्दरम्' को पुरस्कृत करता हुआ त्रिवेणी बन जाता है। पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है कि सौंदर्यानुभूति तीव्र होकर अभिव्यक्ति के लिये जब छटपटाती है, तब कला का उद्‌भव होता है। अभिव्यक्ति ही कुशल शक्ति ही कला है।

उपर्युक्त विविध भारतीय अभिमतों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सौंदर्यानुभूति अभिव्यक्त होकर कला बन जाती है। कला का उद्देश्य मानव मात्र का हित साधन है। यह हित कला के माध्यम से कला-रसिकों को आनन्द के रूप में प्राप्त होता है। आनन्दात्मक रसानुभूति मन तथा भावों का परिष्कार कर उन्हें उदात्त और निर्मल बना देती है। मन की यह निर्मलता तथा व्यक्तित्व की उदात्तता कला प्रेमियों को उस बिन्दु तक ले जाती है, जहां सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के रूप में मानवीय सम्पूर्णता का दर्शन होता है। सम्पूर्ण विश्व के मूल में एक अन्तर्निहित चेतना है, जो व्यक्ति में व्यक्तिनिष्ठ रूप में तथा अपनी वाह्‌य अभिव्यक्ति में वस्तुनिष्ठ रूप से व्याप्त है। वह अपने में पूर्ण होती है। इसकी यह पूर्णता इसे सौंदर्य प्रदान करती है अर्थात् जो पूर्ण है वही सुन्दर है। उसे सर्वव्यापी अनन्त ब्रह्म के सामंजस्यपूर्ण अंग की अभिव्यक्ति भी माना गया है। सौंदर्य दर्शन में एक अद्‌भूत अनुभूति होती है, जो व्यक्ति को तर्क, तृष्णा, व्यामोह आदि के जाल से निकाल कर बन्धन-मुक्त बना देती है। जीवन में अनेक समस्यायें हैं, कठोरतायें हैं, दुःख और संघर्ष की आद्यान्त व्याप्ति है। सौंदर्य और उसकी अभिव्यक्ति कला, व्यक्ति को इन्हीं कठोरताओं से दूर भुलावा देकर ले जाती है। वहीं व्यक्ति को आनन्द और शान्ति की प्राप्ति होती है। इसके दिव्य पालने में झूलकर व्यक्ति जीवन की विषमताओं से मुक्ति पाता है। सौंदर्य की परिपूर्णता तब है जब बोध के साथ व्यक्ति का चित्त आनन्दमय धरातल पर पहुँच जाय। सौंदर्य बोध की प्रथम स्थिति वह है, जहाँ दर्शनोपरान्त व्यक्ति को सौंदर्य का प्रथम परिचय मिलता है। इसकी चरम परिणति या पूर्णता उस स्थिति में पहुंच कर होती है, जहाँ व्यक्ति के चित्त में सौंदर्य का समावेश होता है।[1]

---

१ सुन्दरम् - पृ०सं० १३ - हरदारी लाल शर्मा

भारत का प्राचीन् चिन्तन आनन्द की परम् स्थिति की प्राप्ति पर बल देता है। भारतीय दर्शन से प्रयूत 'सच्चिदानन्द' शब्द भी इसी अर्थ को प्रतिपादित करता है। मनुष्य अपनी शरीरिक, मानसिक, भौतिक, आध्यांत्मिक-सभी प्रवृत्तियों के माध्यम से अपने किसी अभाव की पूर्ति करना चाहता है। वस्तुतः सब आनन्द का अन्वेषण है। सहज आर्कषण, सहज सौंदर्य और आत्मा की सहज आनन्दवृत्ति ही सच्चिदानन्द का स्फुरण व्यापार है। विश्व का संचरण भी इसी पर निर्भर करता है और यही सच्चिदानन्द अन्तिम कोटि का लक्ष्य सिद्ध भी है। [२]

सौंदर्य शास्त्र में सौंदर्य की दार्शनिक व्याख्या मिलती है। सौंदर्य रूपाश्रित है। सृष्टि में रूप के बिना सौंदर्याभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। वस्तुतः सौंदर्य की स्थिति मानव-मन की कल्पना में होती है। सृष्टि के सौंदर्य को अस्वीकार करने वाले सौंदर्यशास्त्रियों की धारणा है कि यदि सृष्टि में सौंदर्य का दर्शन होता है, तो वह सौंदर्य बोध संस्कारों पर आधरित होता है। सौंदर्य आनन्द का घनीभूत निष्कर्ष है। चूंकि सौंदर्य इन्द्रिय-बोध पर आधरित होता है, अतएव इन्द्रियों के सुरुचि सम्पन्न मन के आधार पर सौंदर्य बोध का आग्रही पक्ष प्रकाशमय होगा। [३]

---

२ साहित्य में सौंदर्य विधान - पृ०सं० ६६ - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
३ साहित्य में सौंदर्य विधान - पृ०सं० १०४ - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी

पाश्चात्य दृष्टिकोण

आंग्ल भाषा में 'ब्यूटी' शब्द के माध्यम से सौंदर्य को अभिव्यक्त किया गया है। सौंदर्य को प्रकट करने वाले अन्य शब्द 'प्रटी' (सामान्य आर्कषण), 'ग्रेसफुल' (सुसंस्कृत व्यवहार), 'लवलीनेस' (प्रशंसनीय आनन्दमय रूप), 'ब्रिलिएन्स' (रूप की उज्ज्वलता) एवं 'लस्टर' (कान्ति) है। भाववादी सौंदर्यशास्त्री ब्रेडले ने सौंदर्य की पांच श्रेणियां की है- 'प्रटी' (रंजक), 'ग्रेसफुल' (शोभामय), 'ब्यूटीफुल' (सुन्दर), 'ग्रान्ड' (भव्य) और 'सब्लाइम' (उदात्त)। पाश्चात्य दृष्टि के अनुसार सौंदर्यानुभूति आश्रय पर आधरित होती है। सौंदर्य मूलतः इन्द्रिय संवेदना का विषय है। सौंदर्य के प्रमुख आधार प्रकृति और कला माने गये हैं। [१]

सौंदर्य परम्परा की पाश्चात्य विचारधारा के विकास में प्रारम्भिक विचारको में सुकरात, प्लैटो अरस्तु, फोरस और लांग्जाइनस का स्थान महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य सौंदर्य चिन्तन के विकास को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। -

(१) बाम गार्टन के पूर्व का युग

(२) बाम गार्टन से क्रोचे तक का युग

(३) क्रोचे के बाद से अब तक का युग।

बाम गार्टन के पूर्व के युग को प्राचीन युग कहा जाता है। सौंदर्य चिन्तन की यह प्रारम्भिक अवस्था थी। इसमें सौंदर्य के सम्बन्ध में सरल चिन्तन मिलता है। "इस काल में सौंदर्य का चिन्तन आनन्द प्रदान करने वाला माना गया है तथा सौंदर्य पर दार्शनिक दृष्टि डाली गयी है। साथ ही इस पर भी विचार किया गया है कि 'सौंदर्य का सत्य और शिव से क्या सम्बन्ध है?' काल क्रम के अनुसार इस युग के प्रमुख आचार्य सुकरात, प्लैटो, अरस्तु, लाग्जाइनस, प्लाटिनस, आंगस्टन इत्यादि हैं।" [२]

बाम गार्टन से क्रोचे तक का युग मात्र दार्शनिकता तक सीमित न रहकर शास्त्रीयता से सम्बद्ध हो गया था। सौंदर्य के सत्य और शिव से सम्बन्ध की विवेचना ही नहीं कुरूपता तथा उदात्तता से सौंदर्य के अन्तः सम्बन्धों पर भी गम्भीर चिन्तन किया गया। इस युग के प्रमुख चिन्तक बाम गार्टन, वर्क होगार्थ, लेस्सिंग, कान्ट, हीगेल, क्रोचे, रस्किन, शापनहावर आदि हैं।

तीसरा काल आधुनिक युग है। इस युग पर मनोविज्ञान तथा भौतिकवाद के प्रभाव के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। प्रख्यात विचारक मार्क्स का इस युग पर प्रत्यक्ष प्रभाव है। मानसिक तथा

---

१ प्रगतिशील कविता में सौंदर्य चिन्तन - पृ०सं० २० - डॉ० तनूजा तिवारी

२ प्रगतिशील कविता में सौंदर्य चिन्तन - पृ०सं० २०-२१ - डॉ० तनूजा तिवारी

सामाजिक धरातल पर सौंदर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। विकसित वैज्ञानिक अवधारणाओं का सौंदर्य चिन्तन पर प्रभाव न पड़ना असम्भव था। यह युग दार्शनिक व्याख्याओं को आँख बन्द कर स्वीकार न कर सका परिणामतः सौंदर्य चिन्तन पर वैज्ञानिक अवधारणाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव विवक्षित है।

इस युग के शैली, कीट्स, बर्ड्सबर्थ, टालस्टाय के भाववादी तथा कोर्डबेल, वेलिन्सकी, प्लेखानोव आदि वस्तुवादी विचारकों की श्रेणी में परिगणित किये गये।

इन दोनों प्रकार के विचारको मे किंचित वैचारिक भिन्नता है, तथापि इन्हें एक ही धारा का माना जाता है। ज्ञातव्य है कि इस युग के विचारकों का एक और भी वर्ग है जो सौंदर्य को आध्यात्मिक अथवा ईश्वरीय मानता है तथा दूसरा कलाकार की कल्पना से उद्भूत मानता है। "व्यक्तिनिष्ठता ने अनुभूति की विशिष्टता को महत्त्व दिया अर्थात् ग्राहक की अनुभूति की विशिष्टता की दृष्टि से सौंदर्य की व्याख्या की गई है। यहाँ तक कि व्यक्तिनिष्ठता से तात्पर्य सौंदर्य को व्यक्ति के मन में ढूंढने से नहीं है। इस दृष्टि के पोषक चिन्तकों में कान्ट, रस्किन आदि प्रमुख हैं। इनके अनुसार - सौंदर्य जहाँ वस्तुधर्म पर निर्भर करता है, वहीं ग्राहक के मन में की अभिरुचि संस्कार एवं कल्पना पर भी निर्भर करता है। सापेक्ष दृष्टि से प्रमुख प्रतिपादक अलेखजैण्डर हैं। इन्होनें सौंदर्य की स्थिति वस्तु एवं ग्राहक के मन में स्वीकार की हे। सौंदर्यानुभूति तभी होती है जब दोनों के मध्य भावनापरक सम्बन्ध होता है। इसके पहले सुन्दर या कुरूप होने का प्रश्न नहीं उठता।" [१]

पश्चिमी सौंदर्य चिन्तकों में अग्रणी सुकरात सौंदर्य के अभिज्ञान को महत्त्व देते हैं तथा ज्ञानेन्द्रियों की महत्ता को स्वीकार नहीं करते है। उनके अनुसार सम्यक् प्रकार से प्रयास करके सार्वभौम ज्ञान को आत्मसात किया जा सकता है जो कि मानव जीवन का अभीष्ट उद्देश्य है। "सौंदर्य का आर्कषण अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति है।" [२]

अन्य पाश्चात्य विचारक प्लैटो के अनुसार - "सौंदर्य का कारण कुछ और नहीं केवल उसकी अपनी परिपूर्णता है" [३]

अरस्तु प्रकृति की अनुकृति में ही सौंदर्य मानते हैं। कला के माध्यम से किये जाने वाले पुनर्निर्माण में वह रूप की व्यवस्था सौष्ठव तथा निश्चयात्मकता पर बल देते हैं। उन्होंने केवल सौंदर्य के ही आर्कषण को व्यक्त नहीं किया वरन् उसका सम्बन्ध भी अच्छाई से जोड़ा। [४]

---

१ प्रगतिशील कविता में सौंदर्य चिन्तन - पृ०सं० २१-२२ - डॉ० तनूजा तिवारी
२ एस्थेटिक हिस्टारिकल समरी - पृ०सं० २५५ - क्रोचे
३ डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर - पृ०सं० ३६ - जोसेफ टी शिप्ले
४ ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स - पृ०सं० ६३ - बी० वासक्वेस्ट

फोरस काव्यात्मक सौंदर्य के साथ-साथ अनुभूति और अभिव्यंजना के संयोग को आवश्यक मानते हैं। वह मूल्यों के निर्धारण पर अधिक बल देते हैं। उनकी दृष्टि में केवल भावनात्मक मूल्य ही आवश्यक नहीं है बल्कि सजग विवेक शक्ति भी आवश्यक है। इन्होंने सौंदर्य एवं आर्कषण के समन्वय में काव्य के मूल्य को मान्यता दी है। [१]

लान्जाइनस ने कला का चरम मूल्य उदात्तता एवं भावोन्मेष माना है। वह सौंदर्य को आरम्भिक चरण मानते हैं जो कि द्वितीय चरण में सात्विक आश्चर्य में परिवर्तित हो जाता है और तृतीय चरण मे विराट, भव्य तथ अनन्त सौंदर्य की महानता में पूर्ण रूप से ज्ञान युक्त हो जाता है। [२]

लान्जाइनस ने सौंदर्य को आनन्द के साथ जोड़ते हुए लिखा है - "उदात्तता के उन्हीं क्षणों को सच्चा और सुन्दर समझना चाहिए जो सभी को सर्वदा आनन्दित करे।" [३]

बाम गार्टन ने स्पष्ट किन्तु भ्रान्ति - ज्ञान-फूल देखें, किन्तु बौद्धिक प्रतिपत्ति न हो - को ही-कला का उद्गम माना है। वह प्रकृति तथा इन्द्रियां बोधगम्य संसार को कला का मानदण्ड मानते हैं। सौंदर्य और सत्य के बीच का अन्तर इनके बीच में आत्मगत है। बाम गार्टन ने ही सौंदर्य के दर्शन को दर्शनशास्त्र की एक अलग शाखा के रूप में स्वीकृत किया है। पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्र में सर्वप्रथम 'एस्थेटिक' शब्द का प्रयोग बाम गार्टन ने ही अपने शोध प्रबन्ध में किया है। [४]

कान्ट ज्ञान के दो स्रोत मानते हैं - इन्द्रिय बोधात्मकता तथा समझ। इन्होनें बाम गार्टन के सिद्धान्त सौंदर्यानुभव की पूर्णता के भ्रान्त-ज्ञान का खण्डन किया है। कान्ट इसे अस्वीकार करते हैं कि पूर्णता किसी वस्तु को सौंदर्य प्रदान करती है। इन्होनें वस्तु के रूप को सौंदर्यानन्द का स्रोत स्वीकार किया। कांट सुन्दर को सुखद तथा शुभ दोनों से पृथक मानते हैं। सुखद में वैयक्तिक तथा शुभ में चिन्तन का भाव प्रधान रहता है, किन्तु सुन्दर सार्वभौम तथा अनिवार्य होने के नाते दोनों से भिन्न रहता है। [५]

'हीगेल' की दार्शनिक दृष्टि द्वन्द्व पर आधारित है। इसमें वाद प्रतिवाद का समन्वय होता है। त्रकुट क्रम में सबसे अन्त में 'निरपेक्ष आइडिया' आता है। वह इसे ही विश्व का प्रथम

---

१ ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स - पृ०सं० ४१ - बी० वासक्वेस्ट
२ डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटलेचर - पृ०सं० ५६ - जोसेफ टी शिप्ले
३ पाश्चात्य काव्य शास्त्र की भूमिका - पृ०सं० ५० - सम्पादक नगेन्द्र
४ ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स - पृ०सं० ४०१ - गिलवर्ट एण्ड कून्न
५ ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स - पृ०सं० ४०५ - गिलवर्ट एण्ड कून्न

हेतु मानते हैं। वे प्रकृति की सुन्दरता की तुलना में आत्म चैतन्य जन्य सौंदर्य को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। उनकी दृष्टि में इन्द्रिय बोधात्मक रूपों में चिन्मय मूर्तिदर्शन का आत्म प्रकाश ही सौंदर्य है।[1]

'यूजीन बेरोन' ने संवेगवाद की प्रतिष्ठा की थी। इन्होंने इसके दो पक्ष माने हैं - प्रथम वस्तु और द्वितीय सार। इनके सामंजस्य पर कला की अभिव्यन्जना सामने आती है। इनके अनुसार कला का धर्म ही अभिव्यन्जना है। सौंदर्य को इन्होनें अभिव्यन्जना के आधीन माना है। संवेगात्मक अभिव्यन्जना को आधुनिक धरातल इनके द्वारा प्राप्त हुआ है।[2]

'टालस्टाय' ने बेरोन की दृष्टि में परिवर्तन किया है। 'बेरोन' ने अभिव्यन्जना पर बल दिया है और 'टालस्टाय' ने सम्प्रेषणीयता पर बल दिया है। टालस्टाय ने कला को एक ऐसा मानवीय व्यापार माना है जिससे मनुष्य सचेतक रूप से बाह्य संकेतो के द्वारा उन भावनाओं को दूसरों तक प्रेषित करता है, जिसमें वह स्वयं लीन हुआ हो। टालस्टाय सच्ची कला और जनता की कला के निकट हैं, जो बहुसख्यंको के लिये बोधगम्य है।[3]

प्रसिद्ध इटैलियन विद्वान क्रोचे के अनुसार- "अभिव्यक्ति ही कला है। क्रोचे के अनुसार वस्तु महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उस वस्तु की अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण है। क्रोचे ने अभिव्यञ्जनावाद के माध्यम से सौंदर्य संबन्धी अपनी दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। क्रोचे सौंदर्य को प्रकृतिगत न मानकर कलाकार की सृष्टि मानते हैं। उन्होने सहज ज्ञान को मानसिक बिम्ब मानकर कहा कि - "कलाकार अपने माध्यम से उसके प्रकटीकरण का प्रयास करता है।" क्रोचे सौंदर्य को सफल अभिव्यञ्जना मानते हैं जो न तो कम होती है और न ही अधिक बल्कि अपने में पूर्ण होती है। क्रोचे प्रातिभ (Intution) ज्ञान को बुद्धि से पूर्णतया स्वतंत्र मानते हैं। वे प्रातिभ ज्ञान को प्रथम श्रेणी में तथा बौद्धिक ज्ञान को द्वितीय श्रेणी में रखते हैं। वे मानते हैं कि प्रथम अभिव्यञ्जना है जो स्वतंत्र है और द्वितीय धारणा है जो कि आश्रित है। क्रोचे के अनुसार सही अर्थो में प्रातिभ ज्ञान देशकाल की सीमा में बंधा नहीं रहता तथा कला सम्बन्धी धारणा प्रातिभ ज्ञान से जुड़ी हुई है।[4]

डार्विन ने सौंदर्य के उद्‌गम की जीव-शास्त्रीय व्याख्या की है। इनकी धारणा है कि सौंदर्य-बोध पशु पक्षियों के जीवन में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[5]

---

१ साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक - पृ०सं० १३३ - रमेश कुन्तल मेघ
२ साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक - पृ०सं० १६६ - रमेश कुन्तल मेघ
३ ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक - पृ०सं० ६१ - बी बास्क्वेस्ट
४ एस्थेटिक हिस्टारिकल समरी - प्रस्तावना से - क्रोचे
५ प्रगतिशील कविता में सौंदर्य चिन्तन - पृ०सं० २६ - डॉ० तनूजा तिवारी

इस प्रकार सौंदर्यानुभूति के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के विविध मत हैं, जिनके विकास का इतिहास अत्यन्त व्यापक है। अनेक सौंदर्य चिन्तकों ने सौंदर्यानुभूति के विविध आयामों पर प्रकाश डाला है।

(ख)- सौंदर्यानुभूति और साहित्य -

मानवीय सौंदर्यानुभूति आनादिकाल से ही अभिव्यक्ति की उद्दाम ललसा से सम्पृक्त हो विविध कलाओं, जिसमें साहित्य काव्य एक है - के माध्यम से अन्तश्चेतना को उल्लसित करती आनन्दानुभूति के रूप में प्रवाहित है। वैदिक वाङ्मय मानवता की शाब्दिक अभिव्यक्ति का सर्व प्राचीन उदाहरण है। वेदों में भी सब से प्राचीन ऋग्वेद पर यदि हम दृष्टि निक्षेप करें तो प्रकृति के विराट उत्क्रोड़ में विहार करता मन्त्र दृष्टारः ऋषि अनायास ही सौंदर्यानुभूति का ललित चित्रण कर उठता -

" हे सुन्दर मुख वाले अग्नि ! तुम मान्य तेजस्वी हो। जब तुम सुवर्ण के समान प्रकाशित होते हो, तब तुम्हारा स्वरूप शोभन बन जाता है। विद्युत में तुम्हारा तेज अन्तरिक्ष में प्रकट होता है। तुम सूर्य के समान प्रकट हो।" [१]

मानवीय चेतना ने संसार को सम्यक् रूप से समझने का निरन्तर प्रयास किया है। कहीं उसका प्रयास तर्काश्रित है तो कहीं भावनात्मक धरातल पर अनुभूति के द्वारा। इस सत्य के साक्षात्कार का उपक्रम, तर्क प्रवणता के आधार पर विश्व की अभिज्ञा का प्रयास दर्शन की सीमा के अन्तर्गत आता है जबकि भावनात्मक धरातल पर अनुभूति के माध्यम से सत्य के साक्षात्कार का उपक्रम काव्य (साहित्य) कहलाता है। दर्शन हमारी बुद्धि को सन्तुष्ट करता है जबकि काव्य हमारी कल्पना और आत्मा के लिये मधुर भोज्य पदार्थ प्रदान करता है। [२]

जगत का मूल तत्व क्या है? इसपर प्राच्य तथा पाश्चात्य दार्शनिकों ने सम्यक् विचार किया है। दोनों ही उसे अवर्णनीय तथा अवाङ्मनस्वगोचर निर्धारित करते है। [३]

भारतीय दर्शन उसे सत् चित् आनन्द कहते हैं। मनुष्य की आत्मा इसी ब्रहम् की अंश है। ईश्वर अशं जीव अविनाशी [४]

गीता में भी इसे उद्धृत किया गया है।

"माया के वश वर्ती होकर आत्मा ब्रहम से स्वयं को पृथक होने की भ्रांति से ग्रसित हुई है।"

---

१ ऋग्वेद - १/५८/४

२ डॉ० हरि नारायण सिंह - छायावाद काक तथा दर्शन पृ०सं० - २४

३ डॉ० आनन्द कुमार स्वामी - "The Transformation Nature" में संकलित आभास तथा परोक्ष निवन्ध।

४ तुलसी कृत रामायण - रामचरितमानस - उत्तर काण्ड

सो मायावश गर्यो गोसाईं। बंध्यों कीट मरकट की नाईं।। [1]

"परमात्मा से पृथक होने की भ्रांति के कारण आत्मा अपने आपको निरन्तर अभाव ग्रस्त अनुभव करती है और जब तक उसे सम्यक् ज्ञान नहीं होता तब तक वह संसार के विविध विषयों में तृप्ति के साधन खोजती है। उसकी भ्रान्त आशा विविध संदर्भो में आनन्द की खोज कराती है। इस प्रक्रिया में आनन्द तत्व की सम्प्राप्ति की अभीप्सा तथा आत्म स्मरण की अभिलाषा उसकी लीला का रहस्य है।" [2]

"समस्त कलाऐं जिसमें से एक काव्य भी है, ब्रह्म के इसी आनन्द रूप की अभिव्यक्ति का प्रयास करती है।" [3]

"यह आनन्द ही समस्त सृष्टि का मूल है। इसी को पाकर जीवन आप्तकाम होता है।" [4]

"यही रस है और रस ही आनन्द की सत्ता है। (रसो वैसः) साहित्य समस्त कलाओं का प्रयोजन इसी रस की साधना है। अतः आनन्दानुभूति की अभिव्यक्ति ही साहित्य का प्रयोजन है। साहित्य की उसी साधना को भवभूति ने आत्सा की कला कहा है।" [5]

"मानवीय चेतना में जब कभी आत्मानुभूति जाग्रत हो उठती है तो इसका समुल्लास किसी न किसी के रूप में जाग्रत होता है। वस्तुतः कलाओं की अभिव्यक्ति के रूप में व्यक्ति का ही उपक्रम करता है। इस प्रक्रिया में आत्माभास से विभोर होकर कलाकार आनन्दित हो उठता है। इस सन्दर्भ में दृष्टव्य" -

भाषाबद्ध करिब मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई।। [6]

"इस प्रकार काव्य को जीवन की ललित अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। जीवन की मूल प्रेरणा काव्य चेतना की प्रधान बिन्दु है तथा जीवन प्राणों की धारा का रसमय विलास है।" [7]

---

१ तुलसी कृत मानस - उत्तर काण्ड
२ तत्वार्थ दीप निबन्ध ६८, ६६, तथा ११५, ११६ - डॉ० प्रेम स्वरूप द्वारा अपने शोध प्रबन्ध "हिन्दी-बैष्ण साहित्य में रस परिकल्पना" में पृ० सं० - ११३ पर उद्धृत।
३ आचार्य राम चन्द्र शुक्ल - चिन्तामणि भाग-१ पृ०सं० १६२ - "काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था"
४ तैत्तीय - २/६/१ - ३/६/१
५ भवभूति - उत्तर राम चरित
६ तुलसी - रामचरित मानस - बालकाण्ड पृ०सं० -३४
७ कठोपनिषद - २/३/२, मुण्डक - ३/१/४

"कला सृजन धर्मिता का परिणाम है। इसमें लालित्य और सौंदर्य की प्रधानता रहती है। यह दोनों ही आत्मा और आनन्द के सहगामी हैं। इसके मूल में सृष्टि की इच्छा, सिश्रक्षा विद्यामन है।" [१]

"शैव दर्शन में सिश्रक्षा को श्रेष्ठ रचना का मूल कारण कहा गया है। संक्षेप में मानव साहित्य के माध्यम से स्वयं को ही व्यक्त करने का प्रयास करता है। परमात्मा के विस्मृत या पृथक होने की भ्रान्त प्रतीति साहित्यकार को व्याकुल बनाये रखती है। जब तक ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो जाता या सम्यक् ज्ञान नहीं हो जाता कि हमारी आत्मा ही परमात्मा है तब तक संसार में एक भटकाव के दौर से गुजरते रहते हैं। हम संसार में जितना आनन्द पाते है, सौंदर्य जितना ही देखते हैं उनते ही हृदय में अभाव की पूर्ति और जागती है। देखकर भी देखने की साध किसी तरह भी मिटती नहीं। मालूम होता है यह अपूर्ण है। हमारा हृदय पूर्ण सौंदर्य को चाहता है किन्तु वृत्ति के द्वारा उसका आस्वादन कभी किया ही नहीं जा सकता। वृत्ति में तो खण्ड सौंदर्य ही आभाषित होगा इसीलिये ही आकुलता बनी रहती है। रस साधन में विरह इसीलिये रस तत्व माना जाता है। रूप की प्यास उसमें कभी मिटती नहीं। वृत्ति पूर्ण सौंदर्य की प्रतिबन्धक है। सौंदर्य का जो पूर्ण आस्वाद है, वृत्तिरूप में वो विभक्त हो जाता है। वृत्ति में जिस सौंदर्य का बोध होता है, वह खण्ड सौंदर्य है, परिछिन्न आनन्द है। पूर्ण सौंदर्य स्वयं ही अपने को प्रकट करता है।" [२]

सौंदर्य जीवन की शाश्वत सत्ता है। कला और काव्य में विश्व का सम्पूर्ण सौंदर्य समेटा नहीं जा सकता। हमारा अभिप्रेत साहित्य और सौंदर्यानुभूति का सम्यक् विवेचन करना है अतः साहित्य तत्व की विवेचना से सौंदर्य कहाँ तक उन्मीलित होता है तथा साहित्य में यथा शक्य सौंदर्यानुभूति की अवस्थितियों का विहगांवलोकन करेंगें।

जब अनुभूति अभिव्यक्ति के लिये वाक् अथवा वाणी का आश्रय लेती है तब अभिव्यक्ति की यह कला काव्य अथवा साहित्य के अन्तर्गत परिगणित होती है। भारतीय चिन्तकों ने वाणी को चार भागों में विभक्त किया है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी।

"इसका हम उच्चारण करते हैं और दूसरा उसे सुन सकता है। वह वैखरि वाणी का ही रूप है। वैखरि वाणी स्थूल तथा मुखर है।" [३]

---

१ प्रतिभिज्ञाहृदयम् - १/२

२ महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज - भारतीय संस्कृति और साधना भाग-२ पृ०सं० २६६-३००

३ डॉ० आनन्द कुमार स्वामी - The transformation of nature in art पृ०सं० - २००

"प्लैटो के इस कथन की भांति "Power of Speech is the rapture of God" भारतीय मनीषा ने भी वाणी की महत्ता को स्वीकार किया है। षटदर्शन में से एक पतञ्जलि योग दर्शन में 'तस्य वाचकः प्रणावः' अर्थात् 'वाणी से ब्रह्म की अभिव्यक्ति ओंकार है' - कहकर वस्तुतः वाक्-सत्ता की महत्ता को ही प्रतिपादित किया गया है। शब्द उच्चारण के साथ अपने अर्थ की प्रतीति कराता है। अर्थहीन शब्द की कोई सत्ता नहीं वस्तुतः शब्द और अर्थ दोनों एक ही हैं।" [१]

"साहित्य वस्तुतः वाक्तत्व का विलास ही है वाक्तत्व के कारण ही अर्थ का उद्घाटन, प्रकाशन और प्रस्फुटन होता है। शब्द साधना में यही ब्रह्मानुसंधान में सहायता करता है। इसी के प्रसाद से प्राणियों की दैनन्दिनी यात्रा चला करती है।" [२]

बिना बाक्तत्व के स्फुरण के कलात्मक सृजन सम्भव नहीं "नोदितः कविता लोके यावत् जाना न वर्णनम्।" [३]

"शब्द में अपने अनुरूप अर्थ की व्यन्जना की आकांक्षा तथा अर्थ में उपर्युक्त माध्यम चुन लेने की आतुरता सहज है इसीलिये शब्द और अर्थ का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। दोनों ही अनुरूपता एवं सन्तुलन को लिये पारस्परिक साहचर्य के लिये प्रतिबद्ध हैं। यह अनुरूपता सन्तुलन एवं परस्पर प्रतिस्पर्द्धिता ही शब्द, अर्थ एवं उसके साहित्य का सौंदर्य हैं किन्तु इस सन्तुलन की, शब्द और अर्थ के पारस्परिक औचित्य की चरम सीमा काव्य है। इसीलिये साहित्यिक सौंदर्य की पराकाष्ठा काव्य कही गई है। काव्य में शब्द और अर्थ की पारस्पारिक प्रतिस्पर्द्धिता एवं अन्युन रम्यता के दर्शन होते है। शब्द और अर्थ की अन्युन रम्यता की स्पर्द्धिता के सन्तुलन बिन्दु ही शब्द अर्थ की साहित्य भावना के मूर्त होने के स्थल हैं। प्रत्येक उक्ति में सन्तुलनाभास तो रहता है पर सामान्य उक्ति में समाविष्ट साहित्य या सन्तुलन का अकुंर तथा तद्भूत सौंदर्य काव्य में विकसित होकर ध्रुवान्त पर पहुंच जाते है। काव्योक्ति में ही वस्तुतः साहित्य भावना का पूर्ण विकास होता है अन्यत्र तो उसके स्वरूप धारण करने की अभिलाषा अथवा विकलता के बीज ही परिलक्षित होते है।" [४]

---

१ तुलसी - राम चरित मानस
(क) गिरा अरथ जल बीचिसम, कहियत भिन्न न भिन्न
(ख) कालिदास रघुवंश - मंगलाचरण - प्रथम श्लोक
वागर्थावित्र सम्प्रक्तौ बन्देवाणी विनाययिकै।, भवानी शकरौं वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।।
२ दण्डी - वाचामेव प्रसादेन लोक यात्रा प्रवर्तते।
३ भट्टतौत - डॉ० बल्देव उपाध्याय - 'भारतीय साहित्य' पृ०सं० - ४५०
४ भगवत स्वरूप मिश्र - भारतीय सौंदर्य चिन्तन में साहित्य तत्व पृ०सं० - २६२

"इस प्रकार भारतीय सौंदर्य चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में साहित्य का जो स्वरूप सुनिश्चित किया गया है उसका आधार भी सौंदर्यानुभूति ही है। भारतीय वाड्मय में ऋग्वेद काल से अद्यापि साहित्यिक परम्परा में विविध रूपों में सौंदर्यानुभूति दृष्टिगोचर होती है। वैदिक ऋषि प्राकृतिक शक्तियों की उपासना प्राणमयी सत्ताओं के रूप में करते है और उनके स्वरूप एवं शील का वर्णन करते समय एक प्रकार की विस्मय भावना से भर जाते हैं। वस्तुतः उनकी सम्भ्रमपूर्ण प्रशस्तियों में यह भावना प्रत्यक्ष झलकती दृष्टिगोचर होती है। वैदिक कवि सृष्टि विस्तार की अनन्तता एवं दुर्बोधता से प्रभावित हैं और उसके प्रति एक कुतूहल एवं जिज्ञासा तथा विस्मय के भाव से अनुप्राणित हैं। दिन तथा रात के क्रमशः आवागमन, सरिताओं के निरन्तर गतिशील रहने पर जल सन्दोह समुद्र का निश्चल बने रहना, सौंदर्य मण्डित नित्य नवीन सूर्यों, अग्नियों, जलों, उषाओं इत्यादि की संख्या के विषय में प्रश्न पूछना वैदिक कवि की सौन्दर्य-जिज्ञासा का परिणाम है।" [१]

"ऋग्वेद में जहां सौंदर्य प्रदर्शन में ज्योति के प्रति प्रियता दृष्टिगोचर होती है वहीं सुष्ठु सवेशस्य अभिराम मन्द्र, सुब्र, चारू, कोम्य, रोचन, सुभग प्रभृति शब्दों का अर्थ 'सुन्दर' के अर्थ में हुआ है।" [२]

शोभा के अर्थ में 'श्री' का प्रयोग भी प्रायः मिलता है। [३]

कतिपय मन्त्रों में 'सूनरों' का प्रयोग भी पाया जाता है। [४]

रमणीय के अर्थ में 'रण' शब्द भी कतिपय मंत्रों में प्रयुक्त हुआ है। [५]

"संज्ञा पदों में 'सु' उपसर्ग जोड़कर सुन्दर का बोध प्रायः कराया गया है। अतएव स्पष्ट है कि वैदिक काल में सौंदर्य के प्राकृतिक मानवीय तथा दिव्य स्वरूपों का बहु विधि वर्णन हुआ है। एक उल्लेखनीय विशेषता यह देखी गई है कि उषा, मरूत, सूर्य इत्यादि से सम्बन्धित सूत्रों में बाह्य सौंदर्य के अतिरिक्त ऋषि कवियों ने इन प्राणमयी शक्तियों के आन्तरिक सौंदर्य की भी व्यन्जना की है और उनके मंगल विधायक शील को भी बलाघात दिया है।" [६]

---

१ कल्पर नयाकति सूर्यासा कत्युषाशा कत्युषिधामा -
नोपस्पिजम वह पितरौ वदामि पृच्छामि, वह कव्यौः विदमनेकम् ऋग्वेद - १०/८८/१८

२ ऋग्वेद - १/१३/७, १/४७/२, १/४८/१३, १/८७/६, २/१६/१, १/२०/१, १/२६/१, २/३३/५, २/२७/६ इत्यादि।

३ ऋग्वेद - १/१७६/१, १/११७/१३ इत्यादि

४ ऋग्वेद - १/४८/१० इत्यादि

५ ऋग्वेद - १/६५/३, १/६६/२, १/१२६/७ इत्यादि।

६ रमाशंकर तिवारी - कमायिनी प्ररेणा और परिपाक - पृ०सं० - २०२

"महाकाव्य काल. वैदिक काल की तुलना में सौन्दर्य चेतना में उत्कर्ष परिलक्षित होता है। बाल्मीकि की रामायण में प्रकृति तथा मानवीय सौंदर्य का वेदों की तुलना में अधिक ललित तथा काव्यात्मक चित्रण हुआ है। रामायण में कतिपय सौंदर्य के ऐसे वर्णन उपलब्ध हैं जिनमें अलौकिक्ता का समावेश यथा - धनुष भंग में राम की विस्मय लोकोत्तर शक्ति, राम का मार्ग रोकने वाले परशुराम का अलौकिक प्रभाव, समुद्र उल्लंघन करते हनुमान का लोकोत्तर पराक्रम इत्यादि अनेक प्रसंगों में हम अलौकिक्ता का अनुभव करते हैं। लंकापुरी अपनी सौंदर्य सम्पदा में अमरावती एवं अलका से प्रतिस्पर्धा करती है किन्तु वहीं हनुमान के प्रवेश के साथ भयंकर रूप धारण कर लेती है। रावण के पुष्पक विमान के सौंदर्य वर्णन में अलौकिक्ता की व्यञ्जना हुई।" [१]

"सुन्दर काण्ड में रावण के राजभवन का वर्णन अत्यन्त अभिराम एवं विस्मयकारी है।" [२]

"ऋतुवर्णन में कवि की सौंदर्य भावना यर्थाथवाद पर आधारित होते हुए भी अत्यधिक मोहक तथा रम्य है। विविध प्रसंगों में वर्षा, हेमन्त, शरद इत्यादि ऋतुओं का अभिराम चित्रण हुआ है। ऐसे स्थलों पर कवि कल्पना की रमणीयता एवं ओजस्विता के प्रभावशाली दर्शन होते हैं। वर्षा ऋतु का एक वर्णन दृष्टव्य है" -

मुक्ता सकाशं सलिलम् पतदवै।
सुनिर्मलम् पत्र पुटेषु लग्नम्।।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगा।
सुरेन्द्र दत्तम् तृषताम् पिबन्ति। [३]

"प्राकृतिक सौंदर्य के अतिरिक्त बाल्मीकि ने नारी सौंदर्य के भी मांसल, मदिर तथा मोहक चित्र खींचे। रावण के शयन कक्ष में सोई वारांगनाओं का वर्णन ललित तथा विस्तृत है - "कितनी ही सुन्दरियाँ मदिरा पीकर वाद्ययन्त्र बजाती हुईं, नाचती गाती हुईं, सो गईं थीं। ऐसा ज्ञात होता था जैसे गजेन्द्र द्वारा कुचली मसलीं, वन-पुष्प बल्लरियाँ हों। उरोजों के बीच में पड़े हारों की शोभा जल मुर्गों के सदृश हो रही थी, प्रमदाओं के जन्मस्थल नदी तट के समान, आभूषण हंस तथा चक्रवाक के समान तथा सोई हुई स्त्रियों का समूह नदी के समान शोभायमान प्रतीत हो रहे थे।" [४]

---

१ बाल्मीकि रामायण, युद्धकाव्य ११५ से १२४ तक
२ सुन्दर काव्य - १४ से १५ चौथाई
३ बाल्मीकि रामायण क्रिदिकन्धा काव्य
४ रामायण - सुन्दर काव्य - सर्ग - १०-११

सुन्दर काव्य में के अठारहवें दोहे में अशोक वाटिका में रावण का अनुगमन करने वाली, मदिरा के नशें में प्रमत्त प्रमदाओं का वर्णन उल्लेखनीय है। नारी के सौंदर्य-वर्णन में कनकवर्णा, चन्द्रानना, पद्मानना, कमलेक्षणा, विशालाक्षी, शुभ्र, सुमध्या, नीलकेशी, विम्बोष्ठी प्रभृत्ति, विशेषताओं का उल्लेख हुआ है। सीता की जंघाओं के लिये कदली, हस्तिसुंड इत्यादि तथा स्तनों के लिये बिल्वफल, तालफल इत्यादि उपमान प्रयुक्त किये गये हैं। एक भिन्न प्रसङ्ग में उरोजों की तुलना स्वर्णकलश से की गई है। स्त्री-सौंदर्य के साथ रामायण में पुरूष सौंदर्य का भी चित्रण किया गया है। अरण्य काण्ड के प्रारम्भ में राम के रूप सौंदर्य का चित्ताकर्षक वर्णन उपलब्ध है। देवाङ्गनाओं के रूप सौंदर्य वर्णन में कवि की पौराणिक आस्था प्रतिफलित है। इन स्थलों पर दिव्य सौंदर्य की कान्ति छिटकी दृष्टिगोचर होती है। निष्कर्षतः आदि कवि की सौंदर्य भावना प्रकृति एवं मानव दोनों आयामों को समेटती है और भारतीय साहित्य के सौंदर्यानुभूति का जो समृद्ध संसार आगे चलकर परिलक्षित हुआ है, उसकी भूमिका आदि काव्य में ही ठोस आधारों पर ही प्रतिष्ठत हो गई है।

"महाकाव्य युग की दूसरी महत्वपूर्ण रचना महाभारत है, किन्तु यह अन्य रचनाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि न तो इसके रचनाकार एक हैं और न निश्चित कालावधि में इसकी रचना हुई है। इसके रचनाक्रम में अनेक कवियों का योगदान है, साथ ही इसकी रचना शताब्दियों तक हुई है। रामायण की तुलना में महाभारत में काव्य तत्व की नहीं अपितु इतिहास तत्व की प्रधानता है और सौंदर्य वर्णन की अपेक्षा वृत्त अधिक मिलता है।" [1]

"महाभारत में सौंदर्य के पर्याय के रूप में कान्त, शोभन, रुचिर, रम्य, सुरूप, सुभग, मनोहर, मनोज्ञ इत्यादि शब्द मिलते हैं।" [2]

"कुछ स्थलों पर महाभारत में सुन्दर शब्द भी उपलब्ध होता है। चित्र प्रसादनी बाला देवा नामपि सुन्दरी।" [3]

"संस्कृति कवियों में अश्वघोष, कालिदास, दण्डी तथा माघ जैसे कवियों की कृतियों में सौंदर्य-वर्णन की प्रचुर परम्परा पाई जाती है। संस्कृत साहित्य में सौंदर्य शब्द का यथेष्ट प्रयोग मिलता है। शब्द ने यहाँ केवल पारिभाषिक अर्थ वैशिष्ट्र्य ग्रहण नहीं किया है। यहां रूप के वाह्य आकर्षणों को व्यक्त करने के लिये लावण्य का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त ललित, सुष्ठ,

---

१ डॉ० तनूजा तिवारी - प्रगतिशील कविता में सौंदर्यचिन्तन - पृ०सं०-११
२ डॉ० तनूजा तिवारी - प्रगतिशील कविता के सौंदर्य चिन्तन - पृ०सं० - १३
३ डॉ० तनूजा तिवारी - प्रगतिशील कविता में सौंदर्याचिन्तन - पृ०सं० - १३

काम्य, कमनीय, रमणीय आदि शब्द भी मिलते हैं। संस्कृत कवियों द्वारा किया गया सौंदर्य वर्णन अत्यधिक प्रभावशाली, परिष्कृत तथा समृद्ध है। सौंदर्य विवेचन अत्यन्त मार्मिक तथा हृदयग्राही है। इसके परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट रूप से कारयित्री प्रतिभा का उन्मेष है।" [1]

संस्कृत के उपरान्त अपभ्रंश काल में कवियों ने प्रचुर सौंदर्य वर्णन किया है और संस्कृत काव्य के समृद्ध उत्तराधिकार का उन्मुक्त प्रयोग किया है। उनकी कृतियों में प्राकृतिक एवं मानवीय सौंदर्य का विषद वर्णन है। पुष्पदन्त, स्वयंभू आदि अपभ्रंश कवियों की सौंदर्य-चेतना अतिशय समृद्ध है। यद्यापि इस साहित्य में बाह्य सौंदर्य के रूपांकन पर अधिक आग्रह है तथापि आन्तरिक सौंदर्य वर्णन के भी प्रचुर उदाहरण मिल जाते हैं -

बड्ढ परमेसरि दिव्व देहणं बीयायंदहु तणिय रेहणं ललिय महाकइमय पउत्रिणं भयण भाव विण्णम जुत्ति।

णं गुण समग्ग सोहग्गथत्ति णं णारिरूव विरयण समत्ति।।

लायण्ण वत्त णं जलहि वेल सुरहिय णं चंपय कुसुम माला थिर सूहव णं सप्पुरिस रित्ति बहुलकवण णं वायरण दित्ति।। [2]

हिन्दी साहित्य को ऋग्वेद से लेकर अपभ्रंश काल तक की परम्परा का समृद्ध उत्तरधिकार मिला है। सौंदर्य वर्णन की इस परम्परा का हिन्दी कवियों ने सम्यक् प्रयोग किया हैं उत्तर कालीन संस्कृत काव्य में अलंकारों के हृदय विनियोग के साथ-साथ वक्रोक्ति सम्मत वाग्वैदग्ध्य की छवियाँ भी प्रस्फुटित हुई हैं। मध्यकालीन हिन्दी, भक्तिकाल प्रेमाख्यानों इत्यादि में नख-शिख पद्धति के अंतर्गत अगण्य सौंदर्य चित्रों की अवतारणा हुई है। जायसी का नख शिख वर्णन, श्री हर्ष जैसे संस्कृत कवियों तथा अपभ्रंश के महाकाव्यों एवं खण्डकाव्यों की वैभवमयी परम्परा की प्रतिकृति है। सगुणोंपासक कवियों में सूरदास का सौंदर्य वर्णन, कालिदास तथा परवर्ती संस्कृत कवियों के सौंदर्य वर्णन एवं अपभ्रंश कवियों के सौंदर्य वर्णन को उज्ज्वल वैभवपूर्ण एवं वर्णाड्ढ्य संस्कार कहा जायेगा। सूर ने निरन्तर सौंदर्य की अपार्थिवता, मादकता, नैनग्राह्यता, लावण्य एवं उसके अद्भुत विस्मयोत्पादक प्रभाव को रेखांकित किया है। [3]

---

१ डॉ० तनूजा तिवारी - प्रगतिशील कविता में सौंदर्यचिन्तन पृ०सं० - १३ - १४
२ अपभ्रंश साहित्य - डॉ० कोछड़ - पृ०सं० ८०
३ डॉ० रमाशंकर तिवारी - सूर्य का श्रंगार वर्णन - २/३

तुलसी के सौंदर्य चित्रण में भी पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों का **संदाय दृष्टिगोचर** होता है। उदाहरणार्थ - "जनु विरंचि सब निज निपुनाई।

विरचि विश्व कँह प्रगट दिखाई।

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई

छवि ग्रह दीप शिखा जनु बरई।[1]

इन पंक्तियों में कालिदास कृत शकुन्तला, पार्वती इत्यादि नायिकाओं के रूप सौंदर्य की स्पष्ट छाया दिखाई पड़ती है। कुमार सम्भव में पार्वती के रूप वैभव का सादृश्य दृष्टव्य है -

सर्वोपम द्रव्यसम्मुच्चयेन यथा प्रदेशं विनिवेश देन,।

सा निर्मिता विश्व सृजा प्रयत्नादेकस्थ सौंदर्य विदृक्षयेव।।[2]

तुलसी के अतिरिक्त केशव, पद्माकर, बिहारी, मतिराम, रत्नाकर जैसे सौंदर्यानुभूति के शिखर कवियों की लेखिनी से धन्य होती हुई परम्परा आधुनिक काल में प्रवेश करती है। भारतेन्दु युग राष्ट्रोत्थान के संकल्पों से ओत-प्रोत रहकर भी सौंदर्यानुभूति से रहित नहीं है। द्विवेदी युग मर्यादा के तटबन्धों में काव्य-प्रवाह को सुरक्षित रखने की चेष्टा करता रहा। इस युग में मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने सौंदर्यानुभूति के मर्यादित तथा हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किये हैं। इस युग तक इलियट, एच०जी० लारेंस तथा फ्रायड जैसे पाश्चात्य कवियों और विचारकों के प्रभाव से हिन्दी साहित्य ने रोमांसमूलक अंगड़ाई ली तथा छायावाद के रूप में सौंदर्यानुभूति की सशक्त परम्परा का शुभारम्भ हुआ था।

----

१ तुलसी राम चरित मानस - अयोध्या काव्य

२ कालिदास - कुमार सम्भव - १/४६

अध्याय - २

युगीन परिप्रेक्ष्य और बच्चन

बच्चनजी के साहित्य को समझने के लिये व्यक्तिगत जीवन को और उस समय की परिस्थितियों को समझना आवश्यक है। संगीत की स्वर लहरी का सामान्य ज्ञान उन्हें बचपन में ही प्राप्त हो गया था उन्होंने स्वयं 'क्या भूलूँ क्या याद करँ' में लिखा है - ''मुझे छुटपन में घर की स्त्रियों, लड़कियों के साथ बैठने उनके साथ गाने, ढोलक मंजीरा आदि बजाने का शौक था जिसके कारण से मुझे मेहरा कहा जाता था।'' [1]

बच्चन के व्यक्तित्व पर परिवारिक रक्त का असर था। बचपन पर पड़े संस्कारों का असर किसी न किसी रूप में जीवन पर पड़ता है। यह बच्चन के जीवन में स्पष्ट दिखायी देता है। उन्होंने स्वयं लिखा है - ''छः वर्षो तक जो मैं युनिवर्सिटी कोड में रहा हूँ और पिछले महायुद्ध के समय गर्मी की छुट्टी में रैगुलर ब्रिटिश यूनिटों से सम्बद्ध रहकर मैंने आधुनिक हथियारों को चलाने की शिक्षा ली। मैं कलम और बंदूक चलाता हूँ दोनों। मेरे प्रारम्भिक स्वप्नों की कोई प्रेरणा होगी इसमें कोई सन्देह नहीं। अभय, अदम्य, अपराजेय रहने के प्रति जो मेरी यत्किंचित आस्था है उनका मूल भी उन्ही संस्कारों में होगा, यही भाव मेरी पंक्तियों मे उतर आये है -

जब मैं एकाकी पहुँचूगा मझधार
न जाने क्या होगा ?
इस पार पिये, मधु है, तुम हो
उस पार न जाने क्या होगा ? [2]

इसी प्रकार अनेकों प्रसंग व रचनाऐं तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रही हैं। उनके साहित्य की गहराई में जाने से पूर्व उस समय की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को जानना परमावश्यक है -

---

१ बच्चन - क्या भूलूँ क्या याद करूँ - पृ०सं० - २३
२ बच्चन रचनावली-१ पृ०सं०-१०६ 'मधुशाला' 'इस पार उस पार' शीर्षक से उद्धृत

(क) सामाजिक परिस्थितियां -

'बच्चन' का जिस समय साहित्यिक क्षेत्र में पदापर्ण हुआ, उस समय समाज में बाल विवाह व पर्दा प्रथा थी। स्वयं कवि का विवाह बहुत छोटी आयु में श्यामा के साथ कर दिया गया। छोटी आयु में ही कवि की पत्नी का देहान्त हो जाना, इस घटना से प्राप्त वेदना को कवि ने अपनी रचना में उतारा है। उस समय पढ़ाई पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कवि ने संघर्षमय जीवन जीते हुए, अपने लक्ष्य पर पहुँचने के उत्साह को गिरने कभी नहीं दिया। जाति प्रथा, सामाजिक नियमों की कट्टरता थी। सामाजिक कट्टरता की स्थिति का 'बच्चन' के व्यक्तिगत जीवन पर प्रभाव पड़ा। वह अपने मित्र कर्कल के मृत्योपरान्त उसकी पत्नी से अतिशय आत्मीयता होते हुए भी विवाह सम्पन्न न कर सके। यद्यपि 'बच्चन' के मन पर किसी नारी के सौंदर्य मूलक आकर्षण का पहला प्रभाव पड़ा था। बच्चन ने अपनी आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में चम्पा के प्रति अपने दुर्निवार प्रभाव को स्वीकार किया है जिसका आधार चम्पा का दैहिक सौंदर्य था-

"चम्पा कनकक्षरी सी एक-हरे बदन की गौर वर्ण की लड़की थी। मैंने उसका स्वाभिवक रूप तीन-चार महीने बाद देखा, जब वह हल्के नीले रंग की साड़ी में बिना कोई आभूषण पहने अपनी छत की मुंडेर पर उस ओर आकर बैठ गई थी, जिस ओर मोहन चाचा के घर का आंगन था। छत के ठीक कोने पर नीचे आंगन में लसोड़े का एक पेड़ था, जिसकी शाखें मुंडेर से कुछ ऊंची चली गई थीं। लसोड़े की डाल पत्तियों में कुछ मुंदा, कुछ खुला रूप ही उसका सहज स्वरूप था" [1]

१८ वर्ष की अल्पायु में बच्चन चम्पा के सौंदर्य से अभिभूत हो उठे थे। उन्हे चम्पा की मानसिक तथा शारीरिक निकटता भी प्राप्त हुई थी। मित्र कर्कल के आकस्मिक निधन के पश्चात् स्वाभाविक था कि बच्चन पूर्ण रूपेण चम्पा को अपने अस्तित्व में समाहित कर लेना चाहते थे। उन्होंने ऐसा किया भी, किन्तु वह एकान्तिक क्षणों में बच्चन और चम्पा के मध्य शारीरिक क्रीड़ा बनकर रह गया। तत्काल सामाजिक कट्टरता के कारण बच्चन कल्पना तक नहीं कर सके कि वह कायस्थ होकर किसी ब्राह्मण विधवा से विवाह कर सकें।

इसी प्रकार तेजी का जब उनके जीवन में प्रवेश हुआ तो बच्चन को जाति प्रथा के सामाजिक दंश की पीड़ा झेलनी पड़ी। परिपक्व बुद्धि होने के कारण दृढ़ निश्चय के साथ उन्होंने

---

१ बच्चन - क्या भूलूँ क्या याद करूँ - पृ०सं० - १४२

सामाजिक कट्टरता को अस्वीकार करते हुए तेजी को अपनी जीवन संगिनी के रूप में स्वीकार किया किन्तु उनको सामाजिक कट्टरता का हर प्रकार से सामना करना पड़ा। उन्होंने इसका वर्णन अपनी आत्मकथा में किया है -

"मैंने अपने निकट सम्बन्धियों, मित्रों और अंग्रेजी विभाग तथा युनिवार्सिटी के परिचित सहयोगियों को अमन्त्रित किया था जैसा प्रत्याशित था। मेरे सम्बन्धियों ने 'एटहोम' का बायकाट किया था, कारण अज्ञात न था। जाति विरादरी के बाहर खाने पीने पर ही उन्होंने मेरे परिवार को बहिष्कृत कर दिया था। अब तो एक कदम आगे बढ़कर मैंने जाति धर्म से बाहर की लड़की से शादी कर ली थी। इस पर उनके क्रोध का पारा तीव्रतम बिन्दु पर पहुँच गया था और मैंने यह पहले से जान लिया था कि अपने इस काम से मैं बिरादरी से पूरी तरह काट दिया जाऊँगा।" [1]

(ख) राजनैतिक परिस्थितियां और बच्चन

बच्चन के जन्म के समय भारत में परतन्त्रता के विरुद्ध जन चेतना जागृत हो चुकी थी। १८५७ का विफल विद्रोह राख में दबें हुए अंगारों की तरह बुझा नहीं था, छिप गया था और १८८६ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में एक राजनैतिक संगठन का जन्म हुआ। शनैः शनैः कांग्रेस का जनाधार बढ़ता गया। उसमें गरम दल और नरम दल के रूप में दो धारायें प्रादुर्भूत हुई। महात्मा गांधी के नेतृत्व में जहाँ एक ओर अहिंसात्मक आन्दोलन चल रहा था, वहीं नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद, बटकेश्वर दत्त तथा आशफ़ाक उल्लाखाँ आदि क्रांतिवीर अंग्रेजी सत्ता के उन्मूलन के लिये हिंसा के प्रयोग को उचित ठहरा रहे थे। इस कालखण्ड में विश्व का राजनैनिक आकाश भी विविध घटनाओं से आच्छादित था, जिसका प्रभाव भारत की राजनैतिक परिस्थितियों पर पड़ना स्वभाविक था। उपनिवेशवादी मानसिकता के कारण इंग्लैण्ड ने भारत समेत विश्व के विविध देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। ये देश गुलाम देश थे और उनका विविध प्रकार से शोषण किया जा रहा था। अन्य विकसित राष्ट्र ब्रिटेन की शोषण मूलक विस्तारवादी नीतियों और स्थितियों से ईर्ष्या करने लगे थे। ऐसे राष्ट्रों में भी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाये जागृत हुईं। प्रशा के चांसलर विलियम केसर ने अपनी राजनैतिक सूझबूझ से कई राज्यों को मिलाकर जर्मनी को शक्तिशाली राष्ट्र बनाया। अपनी सैनिक शक्तियों को निरन्तर विकसित किया। इटली जैसे अन्य

---

१ बच्चन - नीड़ का निर्माण फिर - पृ०सं० - २७१

महत्वाकांक्षी राष्ट्रों को उसने संघ में शामिल करके ब्रिटेन और उसके समर्थक साम्राज्यवादी शक्तियों के लिये चुनौती बन गया। इस तनाव का परिणाम १६१८ में दृष्टिगोचर हुआ, जिसका परिणाम पूरे विश्व के साथ भारत को भी भोगना पड़ा। युद्ध की विभीषिका और विध्वंस जीवनीय आवश्यकताओं के अभाव के रूप में भारत के लिये अभिशाप सिद्ध हुए।

यद्यपि भारत ने इस युद्ध में ब्रिटेन का तन, मन, धन से साथ दिया था। भारत के सैनिक ब्रिटेन के शत्रुओं के विरुद्ध वीरता से लड़े जिसकी सारे विश्व में सराहना हुई। युद्ध के उपरान्त जब ब्रिटेन ने भारत को स्वतन्त्र नहीं किया तो भारत की जनता की पीड़ा गांधी के आन्दोलनों के रूप में फूट पड़ी। स्वतन्त्रता के लिये तड़पती जनता अब और कोई बहाना सुनना नहीं चाहती थी, लेकिन ब्रिटेन की मक्कार सरकार झूठे आश्वासनों से भारत को सन्तुष्ट करने का प्रयास करती रही। समय आगे सरकता गया और १६३६ में जर्मनी के अधिनायक सर हिटलर के नेतृत्व ने प्रथम विश्व युद्ध में पराजित धुरी राष्ट्रों में अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली कि मित्र राष्ट्रों के पूंजीवादी स्वार्थ छिनते प्रतीत हुए। परिणाम विश्वयुद्ध के रूप में सामने आया। महात्मा गांधी की असहमति के बावजूद भारत की सैन्य शक्ति का प्रयोग जर्मनी इत्यादि धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध किया गया। इस विनाशकारी युद्ध में ब्रिटेन की शक्तियाँ भी क्षीण होती चली गईं और स्वतन्त्रता के लिये प्राणों की बाजी लगा देने की इच्छा शक्ति भारत के जन मानस में जाग्रत हुई। १६८५ में द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हो गया, किन्तु स्वतन्त्रता क लिये भारत का संघर्ष तीव्र से तीव्रतर होता गया। अन्ततः ब्रिटेन को स्पष्ट प्रतिभाषित होने लगा कि उसे भारत को स्वतन्त्र करना होगा। इस स्थिति में चालाकी से अंग्रेजी ने स्वतन्त्रता के लिये आरपार की लड़ाई लड़ रहे भारतीय नेतृत्व में धर्म के आधार पर फूट डालने की चेष्टा की। कायदे आजम, जिन्ना और उनके समर्थक मजहब के नाम पर मुसलमानों के लिये अलग आजाद मुल्क की मांग करने लगे, जिसका नाम 'पाकिस्तान' रखा गया। अन्ततोगत्वा भारत की राष्ट्रीय अखण्डता तीन टुकड़ों में बंट गई और स्वतन्त्रता भारत को अपनी दो भुजाऐं कटवाने के बाद प्राप्त हो सकी। 'खादी के फूल' में और 'सूत की माला' रचनाओं में 'बच्चन' ने गांधीवाद के आलोक में भारत की स्वतन्त्रता की इस छटपटाहट और परिस्थितियों का प्रस्तुतीकरण किया है।

बच्चन कालीन राजनैतिक परिस्थितियां अपने अनिवार्य आग्रह के कारण उनकी रचनाओं में आयीं अन्यथा तो वे सौंदर्य के कवि थे। उनकी विविध रचनाओं में राजनैतिक छायायें दृष्टिगोचर होती हैं, तथापि 'खादी के फूल', 'सूत की माला', 'भारत के यौवन का गीत', 'सत्य की

हत्या', 'शहीद की माँ', 'राष्ट्र पिता के समक्ष' तथा 'आजादी के चौदह वर्ष' जैसी रचनाओं में उनकी राजनैतिक चेतना का गहन प्रभाव परिलक्षित होता है।

(ग) आर्थिक परिस्थितियां और बच्चन

जिस समय 'बच्चन' का जन्म हुआ उस समय इस देश की आर्थिक परिस्थितियां अति विषम थीं। ब्रिटेन जिसे फ्रांस का अधिनायक नैपोलियन बोनापार्ट **The land of shopkeeper** अर्थात दुकानदारों की जात कहा करता था - का पूंजीपतियों ने अपने चंगुल में फंसा रखा था। देशी उद्योग धन्धे ठप्प हो चुके थे। उपयोग के लिये छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी चीज विदेशों से आती थी, जिसका परिणाम भारत की जनता घोर कंगाली के रूप में भोग रही थी। 'बच्चन' के जीवन काल में बंगाल का भयावह अकाल पड़ा। उस अकाल का स्वरूप इतना विकराल भीषण और भयावह था कि विश्व का संवदेनशील हृदय इस मानवीय पीड़ा से मर्माहत हो चला। स्वयं 'बच्चन' इतने गहरे विषाद से ग्रस्त हो गये थे कि 'बंगाल का काल' शीर्षक कविता के माध्यम से बंगाल के दुर्भिक्ष के परिप्रेक्ष्य में मानवीय पीड़ा के हाहाकार को अभिव्यक्त किया है। बंगाल की इस विभीषिका का प्रभाव तत्कालीन बुद्धिजीवी जन चेतना पर प्रतिक्रियात्मक पड़ा। अमेरिका के सीनेटर ग्रेन्ड क्यूरो ने विषण्ण हृदय से कहा था - "यदि भारत में अंग्रेजी सरकार ने थोड़ी भी मानवता और सावधानी से कार्य किया होता तो बंगाल को यह अमानवीय त्रासदी न झेलनी पड़ती।" [1]

'बच्चन' ने अपनी कविता के माध्यम से अपना विद्रोही गर्भित रोष इस प्रकार से व्यक्त किया है -

मन से अब सन्तोष हटाओ
असन्तोष का नाद उठाओ
करो क्रान्ति का नारा ऊँचा
भूखों अपनी भूख बढ़ाओं
और भूख की ताकत समझों
हिम्मत समझो
कुव्वत समझो
देखो कौन तुम्हारे आगे
नहीं झुका देता सिर अपना [2]

---

१ ग्रेन्ड क्यूरो न्यूयार्क टाइम्स
२ बच्चन - मेरी श्रेष्ठ कविताएँ - पृ०सं० - १६८

"१८५० से १९३७ के बीच विश्व की आय में २५% की वृद्धि हुई थी कि किन्तु भारत वर्ष की आय में २०% का ह्यास हुआ।" [१]

विदेशी व्यवस्था के अर्न्तगत शोषण और उत्पीड़न से गुजरते हुए भारतीय जनता को दिनानुदिन बद से बदतर परिस्थितियों में जाना पड़ा। अन्ततोगत्वा १५ अगस्त १९४७ को आधी रात को पं० जवाहर लाल नेहरू ने लाल किले पर झण्डा लहरा कर भारत की स्वतन्त्रता का स्वागत किया। इस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के पूर्व लार्ड माउन्ट बेटन की दुरंगी चालों के परिणाम स्वरूप मुस्लिम लीग ने कांग्रेस से नाता तोड़ लिया था और पूर्वी पाकिस्तान तथा पश्चिमी पाकिस्तान के रूप में एक नये राष्ट्र का जन्म हुआ। पं० जवाहर लाल नेहरू की अगुआई में पंचवर्षीय योजनाओं के तहत भारत ने स्वतन्त्रता के पश्चात् अपनी यात्रा प्रारम्भ की। आर्थिक नीतियाँ पश्चिमी विचारकों से प्रभावित थी। गांधीवाद यह आश्वासन "हमारे सपनों का स्वराज आज आम आदमी का स्वराज होगा। स्वराज के तहत जब तक आम आदमी को बुनियादी सुविधाओं की गारन्टी नहीं मिल जाती तब तक वह सच्चा स्वराज नहीं होगा। मैं भारत की अर्थ नीति को गांव के हित को दृष्टि में रख कर निर्धारित करने के पक्ष में हूँ।" [२]

११ जनवरी १९५६ को एक बैठक में स्वीकार किया गया कि भारत गाँवों का देश है। यहाँ ८०% आबादी ग्राम वासियों की है, अतः भारत की अर्थनीति गाँवों को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए। ग्रामीण समस्याओं पर ध्यान दिया जाने लगा। नेहरू के बाद लाल बहादुर शास्त्री के प्रधान मन्त्रित्व काल में "जय जवान जय किसान" का नारा लगा। देश में हरित क्रान्ति हुई और जहाँ हम विदेश से खाद्यान्न मंगाते थे वहीं उसका निर्यात् करने लगे। इस दौरान भारत को १९६२ में चीन, १९६५ और १९७१ में पाकिस्तानी आक्रमण का सामना करना पड़ा जिसके कारण आर्थिक परिस्थितियों ने जन्म लिया। देश की समस्यायें विकराल होती चली गयीं। भ्रष्टाचार में लगातार वृद्धि होती गई। १९७६ में बाबू जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में सम्पूर्ण क्रान्ति हुई। पहली बार केन्द्रिय सत्ता कांग्रेस के हाथों से हटकर जनता पार्टी के हाथो में गई। शनैः शनैः भारत ने २१वीं शताब्दी मे प्रवेश किया और बहुदलीय संविद सरकारों का क्रम अभी तक बरकरार है।

जहाँ तक बच्चन की रचना धर्मिता का सवाल है अनायास ये परिस्थितियां यत्र-तत्र उनके रचना संसार में विवक्षित हैं। वैसे वह आत्मानुभूति की गहराइयों में बैठ कर मानवीय

---

१ भारत का आर्थिक इतिहास - तिलक पोद्दार - पृ०सं० - १४७
२ महात्मा गाँधी - वर्धा आश्रम में हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता को साक्षात्कार देते समय - ५ जनवरी १९३६

संवेदनाओं के उद्गाता है। राग-पीड़ा तथा आशा-निराशा के विविध आयाम उनके कथ्य के विमर्श हैं। विशुद्ध आर्थिक चिन्तन की दृष्टि से कदाचित उन्होंने कुछ भी प्रस्तुत नहीं करना चाहा, किन्तु जिस अर्थ से सम्बन्धित घटनाओं ने दुःख दर्द मानवीय संवेदनाओं को मथ डाला है, उन्हें सहजता से उन्होंने काव्य रूप में प्रस्तुत किया।

(घ) धार्मिक परिस्थितियां और बच्चन

बच्चन कालीन धार्मिक परिवेश पर दृष्टि निक्षेप करें तो हम देखेंगें कि सनातन धर्म विविध रूढ़ियों परम्पराओं और कुरीतियों से विकृत हो उठा था। जिसे परिमार्जित करने के लिये स्वामी दया नन्द सरस्वती जैसे समाज सुधारक आर्य समाज के रूप में एक नई धार्मिक संस्था लेकर आये। चूंकि बच्चन रूढ़ियों और कुरीतियों के विरोधी थे, अतः बच्चन तत्कालीन अन्य शिक्षितों की तरह आर्य समाजी बन गये।

बच्चन ने सनातन धर्म की कुरीति, छुआछूत व्यवस्था को तोड़ने के लिये अपने घर में एक हरिजन को रसोइए के रूप में नियुक्त किया। नारी शिक्षा का प्रचार प्रसार करने के लिये स्थान-स्थान पर आर्यकन्या पाठशालाओं की स्थापना की। बच्चन काल में वर्ण व्यवस्था इतनी कठोर हो गई थी कि उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों को अपने साथ बैठने तक ने देते थे। पूना निवासी ज्योति फुले ने हरिजनों में आत्म सम्मान की भावना भरने का प्रयास किया। डा० भीम राव अम्बेडकर भी सनातन धर्म के छुआछूत आदि विकृतियों के विरोधी थे- "वो धर्म स्वीकार करना चाहिए जो उनके साथ समानता का व्यवहार करे।" [1]

अपने इसी विश्वास के साथ डा० अम्बेडकर ने हरिजनों को बौद्ध धर्म स्वीकार करने की प्रेरणा दी। इस काल खण्ड में महात्मा गांधी सच्चे अर्थो में दलितों के मसीहा थे। अनेक कट्टर हिन्दुओं ने गांधी के सुधारों का विरोध किया किन्तु गांधी ने अपनी सुधार योजनाओं के द्वारा इन विरोधों की जड़े उखाड़कर उन्हे धराशाही कर दिया। इस समय समाज को साम्प्रदायिक आग में झोंकने का काम मुस्लिम लीग ने किया, जिसकी प्रतिक्रिया में कट्टर हिन्दूवाद का अभ्युदय हुआ। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक डा० हेडगे वार ने घोषणा की, कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिये है। बच्चन ने अपने रचना संसार में समाज सुधार के प्रति तो आग्रह प्रदर्शित किया है किन्तु धार्मिक कट्टरता को उन्होंने कोई स्थान नहीं दिया - हाँ! वह एक आस्थावान हिन्दू के रूप में दिखाई

---

१ डा० भीम राव अम्बेडकर - धर्म निरपेक्षता वाद और भारतीय प्रजातन्त्र - पृ०सं० - १५६

पड़ते है। उनकी आत्मकथा के परिशीलन से ज्ञात होता है कि वेद, शास्त्र तथा विशेष रूप से तुलसी कृत रामचरित मानस पर उनकी अगाध आस्था है।

(ङ) साहित्यिक परिस्थितियाँ और बच्चन

बच्चन कालीन साहित्यिक परिवेश साहित्य के प्रख्यात युग छायावाद से ओतप्रोत था। छायावाद के प्रवर्तक कवि जय शंकर प्रसाद की संस्मृतियों के साये में रहस्यगर्भित सूक्ष्म सौंदर्य विधान को निःसर्ग की जीवन्त प्रतीतियों का साथ अनेक प्रख्यात, अल्पख्यात और अख्यात कवि छायापादी परम्परा का निर्वाह कर रहे थे। प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रा नन्दन पन्त तो प्रकृति पर इतने समर्पित थे कि उसके बलपर सुकेशिनी तथा चित्ताकर्षक सुन्दरी तक को नकार सकते थे -

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन [1]

'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'लोकायतन' जैसी कृतियों के माध्यम से उन्होंने केवल प्रकृति-प्रसरित मानवीय सौंदर्य का निरूपण किया है, प्रत्युत दार्शानिक पृष्ठ भूमि पर रहस्यवाद तक की यात्रा सम्पन्न की है। वैसे तो प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर आधारित प्रसाद की कामायिनी में रहस्यवाद की प्रस्तुति हो चुकी थी। -

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वो अस्तित्व कहाँ ! [2]

इस युग के अन्य सशक्त कवि पं० सूर्यकान्त 'निराला' अपने सशक्त व्यक्तित्व तथा महान रचना धर्मिता के कारण महा प्राण कहे गये। 'निराला' संगीत के भी विशेषज्ञ थे। उनकी कुछ रचनाओं जैसे 'वर दे वीणा वादिनी वर दे' में संगीतात्मकता समाहित है। यद्यपि वह छायावाद के पुरोधा कवि कहे जाते हैं, किन्तु अनुभूति की सशक्तता में वह छायावादेतर रचनाऐं भी करते थे।

---

१ सुमित्रा नन्दन पन्त - 'पल्लव' शीर्षक से उद्धृत
२ जयशंकर प्रसाद - कामायिनी - चिन्तासर्ग से उद्धृत

उन्होंने मुक्त छन्द का भी प्रयोग किया तथा उनकी प्रख्यात 'कुकरमुत्ता' कविता प्रगतिवाद का एक उत्तम उदाहरण है -

"अबे ओ गुलाब !
खुशवू रंगो आव
भूलमत गर पाई
खून चूसा है खाद का
तुने अशिष्ट !
डाल पर इतराता है कैप्टलिस्ट। [1]

छायावाद की प्रख्यात कवियित्री 'सुश्री महादेवी वर्मा' एक अभिनव दर्शन के साथ साहित्य जगत मे विराजमान थीं, तो उन्होंने पीड़ा को स्वीकृति देकर उसे अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया था। -

"तुमको पीड़ा में ढूढ़ाँ।
तुममें ढूढूंगी पीड़ा।" [2]

इस छायावादी युग में ऐसे भी कवि थे जो 'बच्चन' के समान छायामुक्त थे। इन कवियों में रामधारी सिंह 'दिनकर', 'नरेन्द्र शर्मा', 'शिवमंगल सिंह 'सुमन' के नाम लिये जा सकते हैं।

बच्चन का इन कवियों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सम्बन्ध था। निःसन्देह युगीन परिस्थितियों का रचनाकार पर प्रभाव पड़ता है। 'बच्चन' को पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्यकारों से बहुत कुछ प्राप्त हुआ होगा, किन्तु अपनी वैयक्तिक विशेषताओं के कारण 'बच्चन' का अपना रचना संसार अनूठा है। अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण बच्चन युगीन साहित्य के विस्तृत प्रवाह में बच्चन के कृतित्व की धारा अलग दिखाई पड़ती है। विभिन्न मनोदशाओं में उनकी रचनाओं को यद्यपि वैविद्य प्राप्त हुआ है, किन्तु उनकी सहज साहित्यिक सृष्टि रागात्मक है। उन्होंने स्वतः स्वीकार किया है -

"नारी किशोरावस्था से ही मेरे जीवन की अंग आवश्यकता, अनिवार्यता बन चुकी थी। चाहे मुझे दुःख दे, सुख दे, चाहे विचलित करे, चाहे शान्ति दे, चाहे मेरे लिये समस्या बने चाहे समाधान।" [3]

---

१ सूर्यकान्त निराला त्रिपाठी - 'कुकुरमुत्ता' कविता में उद्धृत
२ महादेवी वर्मा - 'यामा' - से उद्धृत
३ बच्चन - नीड़ का निर्माण फिर - पृ०सं० - १६५

कवियों की लेखिनी से धन्य होती हुई परम्परा आधुनिक काल में प्रवेश करती है। भारतेन्दु युग राष्ट्रोत्थान के संकल्पों से ओत प्रोत रहकर भी सौंदर्यानुभूति से रहित नहीं है। द्विवेदी युग से आधुनिक युग तक के कवियों और विचारकों के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में छायावाद के रूप में सौंदर्यानुभूति की परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ।

"बच्चन के कृतित्त्व का संश्लेषणात्मक अनुशीलन"

बच्चन ने अपने विद्यार्थी जीवन काल से लेकर जीवन के विविध मोड़ों से गुजरते हुए अनवरत रूप से साहित्य के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाई। अपनी रचनाधर्मिता के द्वारा उन्होंने गद्य व पद्य की सभी विधाओं में उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया। उनकी समस्त रचनायें दों भागों मे विभक्त है -

(क) काव्यात्मक कृतित्त्व

(ख) काव्येतर कृतित्त्व

(क) काव्यात्मक कृतित्त्व का संचित परिचय

बच्चन ने अपनी काव्यात्मक कृतियों में अपने भोगे हुए यथार्थ का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। बच्चन के भौतिक संसार की प्रतिक्रिया से उत्पन्न वैयक्तिक सुख दुःख से गहरे जुड़े होने के कारण इनके गीतों में आत्म सम्पृक्ति और उत्तेजना के हाहाकारी स्वर सुनाई पड़ते हैं। सौंदर्य, प्रेम तथा तज्जन्य उल्लास एवं विषाद को अभिव्यक्ति देते समय 'बच्चन' छायावादी कवियों की भाँति संकोच, रहस्य तथा आदर्श की केंचुल नहीं धारण करते, प्रत्युत साहस के साथ निश्छल हृदय से अपनी रागात्मकता का ऐलान करते हैं। प्रेम उनकी केन्द्रीय वृत्ति है। संयोग और वियोग श्रृंगार की विविध मर्मस्पर्शी परिस्थितियों में उत्पन्न उल्लास, पीड़ा, उदासी, टूटन, व्यथा, हताशा तथा असन्तोष से लबरेज 'बच्चन' के गीतों ने आदर्श के छ्ल को ठुकराकर अपनी अस्मिता के खुलासा हस्ताक्षर किये हैं। उनके काव्यात्मक कृतित्त्व का क्रमशः संचित परिचय इस प्रकार है -

(१) तेरा हार -

"तेरा हार" बच्चन की प्रारम्भिक रचना है। इस कृति में बच्चन की सुकुमार कल्पना कुसुमाहार को प्रियतमा की सुन्दर ग्रीवा में सुशोभित देखकर प्रफुल्लित और विभोर हो उठती है। कवि जानता है, कि उसकी प्रिया के सामीप्य की कामना यद्यपि प्रगाढ़ है, फिर भी वह आवाज देकर प्रीति की गोपनीयता को भंग नहीं करना चाहता। कवि को विश्वास है कि उसकी प्रीति की सघनता कलियों की मादक सुगन्ध बनकर प्रियतमा को उसके पास खींच लायेगी। श्रंगार रस के विविध रसमयी प्रसंगों को चित्रित करती "तेरा हार" बच्चन की काव्यात्मक प्रतिभा का प्रथम प्रयास है।

(२) मधुशाला -

'बच्चन' को सर्वाधिक प्रसिद्धि देने वाली रचना 'मधुशाला' रूबाइयात उमर खैय्याम से प्रभावित है। इसका रचना काल सन् १६३५ है। वस्तुतः 'मधुशाला' एक दर्शनिक रचना है, जिसमें भावनाओं का विपुल भण्डार सुरक्षित है। इस रचना में एक विस्तृत फलक पर कवि ने विश्व के विविध उपादानों के मोहक चित्र खींचे हैं। कवि का दृष्टि-विस्तार त्रिभुवन तक हुआ है, जिसमें त्रिकाल अपनी समस्तता के साथ उपस्थित है। ''कवि का हृदय केवल कवि का हृदय नहीं है। उसके हृदय बोध में त्रिकाल और त्रिभुवन सोते रहते हैं, सृष्टि दुधमुँही बच्ची के समान क्रीड़ा करती है और प्रलय नटखट बालक के समान उत्पात मचाता है। उसका हृदयांगम समीरण के हास और सागर के रोदन से प्रतिध्वनित हुआ करता है। उसके हृदय-मन्दिर में जन्म, जीवन, मरण अविरल गति से नृत्य किया करते हैं, इस कारण कवि के हृदय के जलने के साथ ही आज समस्त विश्व मादक हाला से परिप्लावित हो उठा है। जल और थल, गगन और पवन, सिन्धु और वसुन्धरा, स्वर्ग और नरक, सर और सरिता, जड़ और चेतन, निशा और दिवस, वन और उपवन, मिलन और विरह, प्रणय और संघर्ष, आशा और निराशा, जन्म और जीवन, काल और कर्म सभी वस्तुऐं जिनका अस्तित्व विश्व में है, आज हाला, प्याला, मधुशालामय आभासित हो रही हैं।[1]

'मधुशाला' का कवि सारे विश्व को मधुशाला के रूप में ही देखता है। विविध प्रकार से उसका वर्णन करता है। अपनी रचनाधर्मिता के अभीष्ट तक पहुँचने के लिये, अपने अभिप्रेत को सिद्ध करने के लिये-उसकी निगाहें सर्वत्र दौड़ती हैं और इस प्रक्रिया का परिणाम हिन्दी में एक अभूतपूर्व कृति 'मधुशाला' के रूप में होता है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग -1 सम्बोधन पृ०सं० ४१

(३) मधुबाला -

"मधुबाला" का रचना काल हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का काल है। प्रगति वाद को सूक्ष्म के विरुद्ध स्थूल का विद्रोह कहा गया। प्रगतिवादी काव्य वस्तुतः मार्क्सवाद का काव्यानुवाद था। छायावाद में यद्यपि काव्य के समस्त रमणीय संदर्भ समाहित थे, तो भी भौतिकता के धरातल पर छायावादी, रुचिर रचनाओं को द्वन्द्वात्मकता का शिकार होना पड़ा। इसी युग में बच्चन छायावाद से भी कहीं एक कदम आगे अपनी व्यक्तिवादी चेतना के प्रस्फुटन में एक काल्पनिक संसार की सृष्टि कर रहे थे। संसारिक चिरतृषा से अतृप्त कवि की अन्तर्पीड़ा क्षितिजस्पर्शी आकुलता से आक्रान्त कल्पना के स्वप्निल संसार में संतृप्ति के छदम् मे विभोर हो उठना चाहती है। विश्व में दो ही समस्यायें हैं - पहली समस्या किसी इच्छा या आशा का अभ्युदय, दूसरी समस्या है - इस इच्छा या आशा का पूर्ण हो जाना। जब तक प्राप्य हम से दूर है, तब तक एक आशा तो है, कि मेरा अभीष्ट जब मुझे प्राप्त होगा तब मैं संतृप्त और सन्तुष्ट हो जाऊँगी, किन्तु यह जागतिक यथार्थ है कि कोई भी उपलब्धि व्यक्ति को पूर्ण सन्तुष्टि नहीं दे सकती। जब तक अभीष्ट इच्छा की पूर्ति नहीं होती तब तक हम इस भ्रम में सुखी रह सकते हैं कि जब मुझे मेरा अभीष्ट प्राप्त होगा तो मैं पूर्ण तृप्त हो जाऊँगी। किन्तु यह भ्रम भंग होता है तब इसका दर्द कितना दारुण होता है, इसके स्वर बच्चन की 'मधुबाला' में सुने जा सकते हैं। 'मधुबाला' में इसी काल्पनिक संसार के विविध प्रतीकों के माध्यम से कवि की तृषा के संदर्भ रेखांकित हुए हैं।

सभी पात्र अपना परिचय देते हैं। अभीष्ट जबतक दूर है, आकर्षक है, किन्तु समीप आकर वह अपनी नश्वरता अपना संतृप्त न कर सकने वाला यथार्थ प्रतिभासित करता है और कवि की कल्पना का संसार 'मधुबाला' अदृश्य हो जाती है। मानव का या यूँ कहे कि कवि का कितना दुर्भाग्य है कि उसे उसी छद्म को पुकारना पड़ता है, आवाज देनी पड़ती है जिसके निरर्थक अस्तित्व को वह पहचान चुका है। वह छद्म की इसी मारीचिका में जीवित रहने को विवश है। 'उमर खैय्याम' के दर्शन और प्रतीकों से प्रभावित 'बच्चन' की यह रचना उनके काल्पनिक सृष्टि की झांकी प्रस्तुत करती है।

(४) निशा निमन्त्रण

यद्यपि 'बच्चन' की ख्याति १६३५ में प्रकाशित 'मधुशाला' से हुई तथापि उनकी अन्तर्नुभूतियों के मर्मस्पर्शी स्वर 'निशा निमन्त्रण' के गीतों में सुने जा सकते हैं। 'बच्चन' की अभिव्यक्ति बेहद ईमानदार है। वस्तुतः वे अपने भोगे यथार्थ का प्रस्तुतीकरण करते हैं। १६३६ में जीवन संगिनी श्यामा के देहावशान के समय 'बच्चन' का जीवन संघर्ष के चरम बिन्दु तक पहुंच गया और कवि का भग्न हृदय चीत्कार कर उठा –

सत्यमिटा,
सपना टूटा।[१]

वस्तुतः 'निशा निमन्त्रण' 'बच्चन' की प्रीति की पीड़ा का निर्व्याज दस्तावेज है। कवि की सघन पीड़ा धरती और आकाश के बीच निष्ठा और ईमानदारी से उपस्थित है।

यह एक सशक्त कविता संग्रह है, जिसे लगभग पचास हजार लोगों ने सराहा है। 'बच्चन' स्वयं इस बारे में कहते हैं कि – "कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि मैंने अपने पाठकों के ऊपर भारी बोझ डाला है। उसके सामने कविताऐं रख दी हैं और उसके बारे में कुछ नहीं बताया। जो कुछ जानने की जिज्ञासा हुई उसे उन्होंने मेरी पंक्तियों के अन्दर ही देखने खोजने का प्रयत्न किया है।"[२]

जहाँ तक कविता के रस तथा आनंद का सम्बन्ध है उसका प्रतिपादन कविता से बाहर नहीं किया जा सकता। उसे कविता के अन्दर से ही लेना होगा। यदि रस और आनन्द की खोज की जाये तो उसमें कुछ विशेषता तथा विचित्रता जुड़ जाती हैं। कोई भी रचना करते समय लेखक या कवि पर तत्कालीन परिस्थितियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि 'निशा निमन्त्रण' के रचनाकाल में 'बच्चन' किन परिस्थितियों से होकर गुजरे। जिस समय वे एम०ए० कर रहे थे उस समय १६३० में सत्याग्रह अन्दोलन प्रारम्भ हुआ। बच्चन जी अध्ययन छोड़ कुछ दिन चरखा कातने, नमक बनाने, खद्दर बेचने, व्याख्यान देने, नेताओं की तकरीरे सुनने लम्बे-लम्बे जुलूस निकाल कर नारे लगाने में व्यस्त रहे। आन्दोलन ठण्डा पड़ा तो कवि ने अपने आपको जीवन के समक्ष पाया। भावनाऐं मुखरित हुईं और उनका कवि हृदय जागा।

---

१ बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० १५४
२ बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० १५१

"रूबाइयात उमर खैय्याम" के पाठन का कवि पर गहरा प्रभाव पड़ा फलस्वरूप उन्होंने उसका अनुवाद कर डाला और इस प्रकार अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये बच्चन को वे प्रतीक अच्छे जान पड़े जिनकी ओर खैय्याम ने संकेत किया है - हाला, प्याला, मधुशाला। बच्चन ने प्रमुख शीर्षकों को अपनी कविता का विषय बनाया। इस प्रकार उनकी रचनाओं का सिलसिला चलता गया। कवि की भावनाओं ने तीव्रतम स्थिति को छू लिया। हर तूफान मन्द पड़ता है, हर नशा उतरता है अतः कवि के जीवन में भी परिवर्तन का दौर आया और रचना हुई निशा निमन्त्रण की।

(५) एकान्त संगीत -

'निशा निमन्त्रण' की भाँति 'बच्चन' की रचना 'एकान्त संगीत' भी प्रेम की पीड़ा का घोषणा पत्र है। इस कृति का रचनाकाल १६३६ है। 'निशा निमन्त्रण' १६३८ की रचना है। अतः दोनों रचनाओं में बहुत साम्य है। श्यामा के वियोग एवं कवि के परिवेश में विकीर्ण विविध विसंगतियों से कवि की अस्मिता जगह जगह से दरक गई थी और कवि के सम्पूर्ण अस्तित्व से दर्द का संगीत निस्सृत हो रहा था। इस रचना के दौरान कवि इतना अन्तर्मुखी हो उठा था कि उसने परिवेश से अपनी सम्पृक्ति ही विखण्डित कर दी थी। कवि का काव्य वातावरण से पराङ्मुख होकर अभूतपूर्व प्रकार से अपनी पीड़ा का इज़हार कर रहा था। बच्चन के शब्दों में -

"एकान्त संगीत" में वातावरण का आग्रह भी मैंने छोड़ दिया। यद्यपि वातावरण की सहायता की आवश्यकता पड़ने पर मैंने यदा कदा रात्रि का आश्रय लिया था, पर गीतों की भावना वातावरण पर निर्भर नहीं थी। अब धूल सी मैली चाँदनी भी हँस या मुस्कराकर मेरे अवसाद को कम नहीं कर सकती थी।" [१]

इस कृति में द्वन्द्वात्मकता अर्थात् संयोग-वियोग, हानि-लाभ, जीवन-मृत्य, सुख-दुख, का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० २०६

(६) आकुल अन्तर

'बच्चन' की कृतियों के रचनाक्रम में 'आकुल अंतर'-'एकान्त संगीत' और 'सतरंगिनी' के बीच की रचना है। बच्चन के कथनानुसार -

"निशा-निमन्त्रण में जिस अवसाद की छाया उतरी थी, उसके अन्तिम और सघनतम रूप को देखने के लिये मैं 'एकान्त संगीत' सुनता हुआ 'आुकल अन्तर' की गुहा में बैठ गया। जहाँ अंधकार सघनतम है, वहीं प्रकाश की पहली किरण। उसी के धुँधले किन्तु निश्चित प्रकाश की ओर हाथ फैलाता हुआ मैं 'आकुल अन्तर' से निकल कर 'सतरंगिनी' के आंगन में पहुंच गया।" [१]

श्यामा के वियोग तथा अन्य जागतिक व्यथाओं से क्लान्त और अशान्त बच्चन विविध प्रकार से अपने दर्दे दिल का इज़हार कर रहे थे। इस प्रक्रिया में 'निशा-निमन्त्रण 'एकान्त संगीत' तथा 'आकुल अन्तर' ने जन्म लिया। 'आकुल अन्तर', 'निशा निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' की श्रंखला की कड़ी जैसी प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि कवि दर्द की जिस गली से गुजरता है, उसमें क्रमशः निशा-निमन्त्रण' 'एकान्त संगीत' तथा 'आकुल अन्तर' ठिकाने के रूप में मिलते हैं। बच्चन की रचनाधर्मिता व्यक्तिवादी संवेगात्मकता से ओत-प्रोत है। वे पीड़ा की तीव्रानुभूति की रज्जु थाम संवेदनाओं की अतल गहराइयों में प्रविष्ट हो जाते हैं। संवेदना की इस आराधना में वे सोच को भी जिन्दा रखना चाहते हैं। जैसा कि उन्होंने कहा भी है -

"कविता हृदय व मस्तिष्क की सम्मिलित सामंजस्यपूर्ण प्रक्रिया का परिणाम है। हृदय अनुभवजनित भावना में विलीन होता है, मस्तिष्क विश्लेषणात्मक शब्दों से उसे आकार देता है।" [२]

तथापि 'बच्चन' के दर्द के वे गीत, जिन्होंने लोकप्रियता की पताकायें फहराई हैं - संवेदना और सिर्फ संवेदना के ही प्रसव है, भले ही इन्हें व्यक्त करने की प्रक्रिया में सोच का सहज अस्तित्व भी परिलक्षित होता है।

यद्यपि 'बच्चन' ने अपनी परवर्ती रचनाओं में अवसाद से मुक्त होकर आशावादी रचनायें भी कीं, जिन्हें किसी हद तक सराहा भी गया, किन्तु उनके व्यक्तित्व के साथ पीड़ा जिस प्रकार से रच-बस गई थी, उससे उनके प्रशंसको को सन्तुष्टि नही मिली। 'बच्चन' के अधिकांश प्रशंसक उनकी रागात्मक पीड़ा के आदी हो चुके थे। मैं निःसंकोच कह सकती हूँ कि 'बच्चन' की प्रभविष्णुता का सर्वोच्च बिन्दु रागात्मक करुणा से भीगे दर्द भरे गीत हैं।

---

१ बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० २६२
२ बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० २६३

(७) सतरंगिणी -

सन् १६४५ में रचित 'सतरंगिणी' तेजी बच्चन को समर्पित है। कहते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। 'बच्चन' का जीवन जिन आरोहों, अवरोहों से गुजरता हुआ उस बिन्दु तक पहुंचा था, जिसमें वे 'सतरंगिणी' जैसी रचना कर सके।

यह तो उनके अन्तर्जगत की अनवरत चल रही यात्रा की सहज प्रक्रिया है। उन्होंने जिन्दगी में जिस व्यथा का साक्षात्कार किया था वह 'निशा-निमन्त्रण' 'एकान्त संगीत' तथा 'आकुल अन्तर' पूर्ण होते-होते उनके जीवन की कालिमा निमज्जित निशा उषा की लालिमा बन फूटने लगी थी। पीड़ा परिक्लान्त कवि का जीवन किसी सौंदर्य मण्डित मदालसा की सम्प्रेरक दृष्टि से नहाकर मादकता से ओत-प्रोत होकर स्वप्नदर्शी होकर रह जाता है -

यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।
तूने मदिरा की धारा पर,
स्वप्नों की नाव चलाई है।
तूने मस्ती की लहरों पर,
अपनी वाणी लहराई है। [१]

'बच्चन' की रचनाओं के पढ़ने के क्रम का यदि निर्वाह किया जाय तो कदाचित उनके कथ्य और विमर्श को समझने में सहायता मिल सकती है।

'सतरंगिणी' का अनुशीलन करने के पूर्व 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'निशा-निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', और 'आकुल अन्तर' से हम सहज ही उस मुकाम पर पहुँच जाते हैं, जहाँ से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि 'निशा-निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' और 'आकुल अन्तर' की रचनायें वस्तुतः आशा के स्थान पर निराशा की तथा जीवन के स्थान पर मृत्यु की ओर समर्पित रचनायें हैं। 'सतरंगिणी' कवि की मनोदशा की संक्रमण कालीन रचना है। इसका प्रारम्भ 'आकुल अन्तर' के समाप्त होने तक हो चुका था। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि - यह तमके ऊपर ज्योति, नाश के ऊपर सृजन, हताशा के ऊपर आशा, मृत्यु के ऊपर जीवन की विजय की कृति है। यद्यपि आशावाद से जुड़ी इनकी रचनाओं के परिवर्तन को बच्चन की पीड़ा-क्लान्त

---

१ बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० २६७

कविताओं का अभ्यस्त पाठक पचा नहीं सका और उसके संकेत विविध टीका टिप्पणियों के माध्यम से प्रकाश मे आने लगे। इस परिवर्तन को बच्चन ने पहचाना, किन्तु अब अपनी बदली परिस्थिति जन्य मनोदशा में मुमूर्षधर्मी, मर्मस्पर्शिणी, भावप्रवण गीति-धाराओं को आदर्श नहीं मान सकते थे -

"लेकिन जीवन में सदा दुःखी रहने का आदर्श नहीं बनाया जा सकता। यह जीवन की प्रवृत्ति के प्रतिकूल है। जीने वाले के लिये यह अस्वस्थ है, अस्वाभाविक भी है। ऋषियों की अमर वाणी अब भी गूंजती है -

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मामृतमगमय।

मैं भी तमिस्रा के मरण से पूरी तरह जूझकर ज्योति की ओर, जीवन की ओर जाने को भीतर ही भीतर संघर्ष कर रहा हूँ। मुझे अंधड़ और आंधियों ने बहुत झिंझोड़ा, पर वे मुझे झुका नहीं सकीं। मेरे अन्दर इस्पात की ऐसी शलाका थी, जो मुड़ नहीं सकती थी। इसी ने मुझे संभाला, बचाया, जिलाया।" [1]

---

१ 'सतरंगिणी' चौथा संस्करण - अपने पाठको से। बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० १०

(८) हलाहल -

इस कृति का प्रकाशन सन् १९४६ में हुआ था। प्रकाशन क्रम के अनुसार 'हलाहल' सतरंगिणी' के बाद की रचना है, जबकि उद्भव की दृष्टि से जिन दिनों बच्चन का मस्तिष्क 'हाला' के प्रतीक से अभिभूत था तभी 'हलाहल' के प्रतीक ने भी उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया। वस्तुतः 'हलाहल' की रचना १९३५ अथवा ३६ के प्रारम्भिक दिनों में हुई थी। इसके १५ छन्द 'सरस्वती पत्रिका' में प्रकाशित भी हुए थे। वही सुरक्षित भी रहे। शेष छन्द पाण्डुलिपि में लिखे ही रह गये जिन्हें दीमकों ने खा लिया था। इन १५ छन्दों के अतिरिक्त अपनी स्मृति तथा रचनाधर्मिता के द्वारा 'हलाहल' का पुनसृर्जन हुआ, अतः प्रकाशन तिथि में नहीं अपितु सृजनकालीन मनोभूमि और परिस्थितियों के आधार पर 'बच्चन' की इस कृति का मूल्यांकन होना चाहिए। यह काल 'बच्चन' के मनः कायिक संदर्भो में उनके साहित्याकाश में ऊँची उड़ानों का काल था और उनकी रागात्मक वृत्ति के सम्पोषण के लिये उनके सौंदर्यबोध के विविध आयामों की अभिव्यक्ति के लिये उनके प्रयास का काल था। बच्चन ने स्वतः स्वीकार किया है - ''मेरी स्मरण शक्ति बुरी नहीं है, पर दस बरस बाद मस्तिष्क ने उन बहुत सी बातों को अनावश्यक समझ कर भुला दिया था, जिन्हें उसने किसी समय उत्सुकता के साथ संचित किया था। केवल उन पन्द्रह पदों को छोड़ कर जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हो चुके थे और जो अविकल रख लिये गये हैं - 'हलाहल' के वर्तमान रूप मे कितना उसका पूर्वाशं सन्निहित है और कितना मेरे नवीन अनुभव से समाहित हुआ है, उसे बता सकना मेरे लिये असम्भव है। 'हलाहल' का धरातल एक बार बन चुका था और मेरा नया अनुभव भी। जिसने 'हलाहल' के प्रतीक के अर्थ ही मेरे लिये बदल दिये। उसमें आमूल परिवर्तन नहीं कर सका, फिर भी यह मैं निश्चित कह सकता हूँ कि मैंने 'हलाहल' को १९३६ अथवा १९४० में समाप्त कर दिया होता तो उसका यह रूप कदापि न होता जो आज आपके सामने है।'' [1]

'हलाहल' के माध्यम से बच्चन ने कहना चाहा है कि विश्व विष से भरा हुआ है। इस विष घट के मुख पर नारी के मधुसार विलेपित हैं। इसी नारी अधरों के मधुस्राव का पान करने के लिये पुरुष को विष का भी पान करना पड़ता है। पुरुष वस्तुतः रागात्मक वृत्ति होने के कारण नारी के उपभोग की चेष्टा करता है, किन्तु इस प्रयास में उसको उसकी भोगमयी कामना की मारीचिकाओं में भागते रहकर यावज्जीवन सांसारिक विविध कष्टों का भागीदार होना पड़ता है। पुरुष

---

१ बच्चन रचनावली भाग -१ - पृ०सं० ३७७

नारी के मादक आकर्षण से यह जानते हुए भी कि इसे विविध दुःखों से जूझना पड़ेगा, दूर नही हट पाता। वह अनेक भ्रान्तियों से गुजरता है तथा ऐसी काल्पनिक परिस्थितियां सृजित करता है कि वह गरल के कष्ट से बचकर नारी अधरों का मधुपान कर लेगा, किन्तु वह ज्यों ही नारी के अधरों पर अपने चिर तृषित अधर रखता है और उसे मात्र मधु की मादकता की क्षणिक अनुभूति भर हो पाती है कि विषघट की विष तरंग पुरुष के विषपायी अधरों को अपने विषाक्त विद्युत प्रवाह की लपेट में लेकर उसके हृदय, तन और मन को झकझोर देती है। तो भी पुरुष इस विद्युत–आघात को सहकर इस काल्पनिक मधुतृप्ति की यात्रा जारी रखता है। इससे विरक्त होना वह अपने पौरुष का अपमान समझता है। यद्यपि उसको यह आभास है कि देवदूतों की यह कूटयोजना है कि नारी के दैहिक आकर्षण में फंसाकर पुरुष को विषैले जागतिक निष्कर्षो से ओत प्रोत कर दिया जाय, किन्तु यह पुरुष की विवशता है कि वह तीव्र रागात्मक शक्ति की पीड़ामयी भ्रांति को भी जीवन लक्ष्य मानने के लिये यावज्जीवन मृगतृष्णा का शिकार रहता है।

इस कृति में 'बच्चन' के प्रौढ़ चिन्तन और सर्वत्र व्याप्त वेदना के अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। इसमें दर्शनिकता का विस्तार स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसे 'बच्चन' की चिन्तन प्रधान श्रेष्ठ रचना कहा जा सकता है।

(६) बंगाल का काल

१६४६ में जब संवेदनशील साहित्यकार के मर्म पर चोट पड़ती है तो अभिव्यक्ति की छटपटाहट में इतना उग्र हो उठता है कि उसकी भाषा उसकी शैली, उसका शिल्प, उसका रचना विधान, सब कुछ परिवर्तित हो जाता है और मात्र उसका अभिप्रेत अभिव्यक्ति, केवल अभिव्यक्ति रहता है। १६४३ में बंगाल के दुर्भिक्ष की चपेट में आकर ५० लाख बंग वासियों की जाने गई थीं। बच्चन ने तथ्यों के आधार पर स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर ली थी कि अंग्रेज सरकार यदि चाहती तो अकाल की भयानकता इतनी प्रचण्ड नहीं होती। इस अकाल के महाविनाश से बच्चन इतना विचलित नहीं हुए जितना भारत-विशेष रूप से बंग वासियों की नपुंसक सहिष्णुता से विचलित हुए थे, जिन्होंने इस बर्बर उत्पीड़न को सिर झुकाकर झेल लिया था। 'बच्चन' को यह और भी नागवार लगा था कि सरकार की दानवीय प्रवृत्ति के विरोध में बंग साहित्यकारों की लेखिनी की स्याही सूख गई थी -

"बंगाल में अकाल के कोई प्राकृतिक कारण उत्पन्न नहीं हुए थे फिर भी जैसा कि पत्रों में लिखा गया था 'Men made famini' से बंगाल के लगभग आधे करोड़ नर नारी और बच्चे महाकाल के गाल में समा गये। बंगाल के कवियों में किस प्रकार की प्रतिक्रिया हुई, मैं इसे विस्तार से नहीं बता सकता। अपने बंगाली मित्रों से जो मैंने सुना उससे मेरी धारणा यही हुई कि बंगाल की जनता के समान बंगाल की सरस्वती भी इस विपदा को मौन रहकर ओढ़ गई।" [1]

बच्चन इस अमानवीय घटना से इतना विक्षुब्ध हुए थे कि अपनी प्रतिक्रिया को तुकान्त के स्थान पर अतुकान्त छन्दों में उन्होंने लगातार छत्तीस घंटे बैठे रहकर लगभग एक हजार पंक्तियों की ऐसी कृति सृजित कर डाली, जिसमें भूख को बहुत बड़ी शक्ति के रूप में उल्लिखित किया गया, जिसनें फ्रांस में महान क्रान्ति करवा कर अत्याचारी राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र स्थापित करवा दिया था। इस रचना में कवि की आहत संवेदनाऐं कहीं करूणाकलित होकर आँसू बहाती हैं तो कहीं आक्रोश से खौलने लगती हैं।

---

१ बच्चन रचनावली भाग -। - पृ०सं० ४०६

(१०) खादी के फूल

इस कृति का रचना काल १९४८ है। ३० जनवरी १९४८ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सीने में 'नाथूराम गोडसे' ने एक के बाद एक तीन गोलियां उतार दीं थीं। इस हृदय विदारक समाचार ने समूचे देश को स्तम्भित कर दिया। निश्शस्त्र रहकर जिस महापुरूष ने ब्रिटिश सत्ता से लोहा लेते हुए उसे भारत की सीमाओं के बाहर खदेड़ दिया - अंहिसा और शान्ति के देव दूत की हिंसात्मक मृत्यु से बड़ी घटना भारतीयों के लिये अभूतपूर्व थी। इस घटना की विश्व व्यापी प्रतिक्रियायें हुईं। 'बच्चन' इससे कितना प्रभावित हुए थे, यह उनकी रचना 'खादी के फूल' में देखा जा सकता है।

(११) सूत की माला

गांधी जी की आकस्मिक मृत्यु से विक्षुब्ध कवि ने 'खादी के फूल' के साथ-साथ १६४६ में एक और सशक्त रचना लिखी वह है - 'सूत की माला'। उनकी दोनों रचनाओं में तथ्यों के आधार पर एक सी प्रतिक्रियायें व्यक्त की गई है। बच्चन ने कहा है -

"अपने पाठको से मैं कहूँगा कि वे पुस्तकों के नाम भेद को भूलकर दोनों संग्रहों की मेरी समस्त रचनाओं को बापू के बलिदान की प्रतिक्रिया समझें।" [1]

---

१ बच्चन रचनावली भाग -। 'खादी के फूल' प्राक्कथन से

(१२) मिलन यामिनी - (१६५०)

३३-३३ के तीन भागों में विभक्त ६६ कविताओं का संग्रह 'मिलनयामिनी' 'बच्चन' की नव परणीता पत्नी तेजी बच्चन को समर्पित है। बच्चन का विगत जीवन हताशा और पीड़ा से इतना घायल हो चुका था कि उन्हें जिजीविषा हर हाल में जिन्दगी के सरोकारों से जोड़ ही देना चाहती थी। चूंकि बच्चन की केन्द्रीय वृत्ति प्रेम है, अतः प्रायः मुमूर्ष हो चुके उन्हें संजीवनी देने का कार्य किसी रमणी की उष्मा तथा आजीवन प्रणय ही दे सकता था। यही हुआ। कवि के जीवन में तेजी का प्रवेश ऐसे ही हुआ जैसे सूर्यताप से झुलसी धरती को मेघमाला ने जल प्लावित कर दिया हो और बंजर धरती पर लहलहाती हरीतिमा को देखकर मयूर नृत्य कर उठे हों। अतीत के विषाद को हासिये पर सरकाकर कवि तेजी के संयोग की सुरा से मदविह्वल होकर प्रणय के विविध आयामों से संवेष्टित रागिनियां अलापने लगता है। इन मधुकलित और प्राणरससिंचित रागिनियों का समुच्चय ही है 'मिलनयामिनी'।

प्रणय के विविध प्रसंगों के परिदृश्य हृदय को मादकता प्रदान करते हैं। एक प्रणयी के प्रणय निवेदन, भावविह्वल समर्पण तथा मनुहारों के माध्यम से संयोग श्रंगार की रंगीली छटाओं से रचना परिपुष्ट है। यद्यपि अलग-अलग गीतों से अलग-अलग प्रणय विभोर मनोदशाओं की अभिव्यंजना है तो भी पृथक-पृथक इन गीतों के बीच भी एक सामंजस्य है।

(१३) आरती और अंगारे -

'आरती और अंगारे' बच्चन की विशेष मनोदशा की अभिव्यक्ति है। इस रचना में कवि उस भाव भूमि पर उत्क्रमति हो गया है, जहाँ उसकी वृत्ति काव्य रचना नहीं 'आत्माभिव्यक्ति' है। स्वतः को अभिव्यक्त करना उसकी सहजता, स्वाभाविकता हो गई है। 'आरती और अंगारे' की भूमिका में 'बच्चन' ने स्वतः लिखा है -

"तब मैं अपने मन का सहजभाव ही प्रतिध्वनित कर रहा था। यह प्रतिक्रियायें, ये अभिव्यक्तियां मेरे लिये स्वाभाविक हैं। ये प्रतिक्रियायें मेरे सामान्य मानव के ही अन्तर्गत हैं। इतनी निकटता से इतनी अनिवार्यता से मेरे साथ इनकी संगति बिठलाने के लिये किसी को मुझे कवि की अतिरिक्त संज्ञा देने की आवश्यकता नहीं। मेरे फूट पड़ने को छन्द बनाने, मेरे रोदन, गायन, क्रन्दन, मेरे उद्‌गारों को कविता कहने की जरूरत नहीं। बाबा तुलसी दास ने जब लिखा था कि 'कवि न होऊँ' तो मेरी समझ में यह नम्रता प्रदर्शन न था। भक्ति से अन्तर भर जाने पर राम गुण गान उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया हो गई होगी।"[1]

जिस तरह से हाथी किसी की परवाह किये बगैर अपनी मस्त चाल से अपनी राह पर चलता जाता है। कौन उसकी स्तुति कर रहा है, कौन उसकी निन्दा ? इससे उसे कोई प्रयोजन नहीं। बच्चन ने अपनी इस रचना में इसी प्रकार की गज-वृत्ति का परिचय दिया है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग -२ - पृ०सं० १८०

(१४) प्रणय पत्रिका -

आत्मानुभूति कलाकार की महत्वपूर्ण सम्पदा है, किन्तु गीतकार की तो सर्वस्व है। इसे जीवन की स्थूल घटनाओं तक सीमित नहीं किया जा सकता। कल्पना के विस्तृत धरातल पर अनुभूतियों का अति विस्तृत संसार है। गीतकार प्रत्यक्ष घटनाओं से तो प्रभावित होता ही है, उसकी चेतना की गहराइयों मे निष्पत्त अनुभूतियां भी उसकी रचनाधर्मिता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। 'बच्चन' भाव प्रवण गीतकार हैं। उनके गीतों की अनुभूतिपरक रसवन्ती रमणीयता ने उनकी विस्तृत कल्पना की शरणि को स्पष्ट कर दिया है। उनके पास प्रातिभ (एन्द्रिक ज्ञान से हटकर प्राप्त ज्ञान) अभिज्ञा (ज्ञान) के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से उनके द्वारा भोगे गये जीवन के विविध आयाम हैं। इससे उनकी सृजनधर्मिता को सुविन्यस्त क्षेत्र मिला है। 'प्रणय पत्रिका' तथा 'आरती और अंगारे' कवि की एक ही काल भूमि की रचनाऐं हैं।

जिस समय बच्चन शोध कार्य के लिये कैंब्रिज विश्व विद्यालय गये थे उस समय शोध कार्य के साथ वह बदली हुई भौगोलिक और मानसिक परिवर्तन की स्थिति में कुछ नया अनुभव कर रहे थे। 'प्रणय पत्रिका' तथा 'आरती और अंगार' कृतियों में उनकी इस मनोभूमि से उद्भूत १५८ गीत संग्रहीत है। ५८ 'प्रणय पत्रिका' में और १०० 'आरती और अंगारे' में। सान्द्र अनुभूतियां कवि को कविता के लिये विवश करती हैं। कवि शब्दों के माध्यम से अपने भावों और विचारों को प्रमाता (जो पढ़ता या सुनता है) तक सम्प्रेषित करता है। इस प्रक्रिया में कवि के द्वारा प्रयुक्त भाषा और शिल्प से प्रमाता जितना गइराई तक सम्प्रेषित होता है, उतना ही वह कवि की अनुभूति का अनुभवन करता है। वस्तुतः दोनों का एक ही लक्ष्य होता है। एक शब्दों के माध्यम से किसी लक्ष्य तक पहुँचता है, तो दूसरा कवि के द्वारा प्रयुक्त शब्दों की रज्जु थाम उसी लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयास करता है। दोनों के बीच मे तादात्म्य आवश्यक है -

"वास्तव में मैं अपनी कविताओं को लिखकर जो ढूँढ़ता हूँ, वही आप पढ़कर ढूँढ़ते हैं। इस प्रकार कविता लिखने व पढ़ने का आन्तरिक लक्ष्य एक ही है। सारथी जहाँ घोड़ों को हाँककर पहुँचता है, सवार वहाँ रथ में बैठे-बैठे पहुँच जाता है। कवि का काम यदि हाथों तक नहीं हृदय तक पहुँच सके तो वह पाठक के लिये कितना बड़ा वरदान है।"[१]

---

(१३) बच्चन रचनावली भाग -२ - पृ०सं० ८५

रागात्मक ऐश्वर्य के राही बच्चन रागात्मकता के आधार पर कोई दार्शनिक अवधारणा प्रस्तुत करना चाहते थे। उनके द्वारा भोगे यथार्थ के आधार पर इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये पर्याप्त सामग्री थी। एक लम्बे गीत के द्वारा इस लक्ष्य को प्रतिपादित करने के बजाय गीतों की श्रंखला के माध्यम से इस कार्य को सम्पन्न करने की बच्चन ने चेष्टा की। यद्यपि प्रत्येक गीत दूसरे से संश्लिष्ट (जुड़े हुए) है। फिर भी गीत की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है -

"मिलन यामिनी" के गीत प्रकाशित कर देने के बाद मेरे मन में एक भाव बड़े वेग से उठने लगा, कि जीवन की जिस ललक को तरह-तरह के विरोधों के बीच मैंने वाणी दी है, उसके मूल स्रोत को अवगाहूँ और देखूं कि क्या केवल राग के आधार पर जीवन का कोई सम्यक् दर्शन निरूपित किया जा सकता है। यह एक लम्बी कविता का विषय था, जिसके लिये मेरे जीवन की परिस्थितियां अनुकूल न थी, मैंने गीतों की श्रंखला का आश्रय लिया।" [1]

---

१ बच्चन रचनावली भाग -२ - पृ०सं० ८५

(१५) धार के इधर उधर -

१९४० से १९५६ तक के कालखण्ड के बीच विशेष परिवेश तथा मानसिकता जन्य परिस्थितियों में विरचित यह काव्य संग्रह है। तारतम्यता की अपनी परम्परा से हटकर प्रायः प्रत्येक कविता स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। इन कविताओं की प्रस्तुति में कोई पूर्व योजित नीति भी परिलक्षित नहीं होती। 'बच्चन' द्वारा विरचित इन कविताओं को किसी संग्रह में रखने की बात बच्चन के मन में इसलिये नहीं आयी थी कि उनके विकास की अन्तर्धारा में इन कविताओं का स्थान निश्चित करना उनके लिये कठिन प्रतीत हुआ था। इसलिये बच्चन के काव्य प्रवाह के साथ इन्हें न जोड़कर इनका नामांकन 'धार के इधर उधर' किया गया।

बच्चन की सृजनधर्मिता के परिप्रेक्ष्य में इस संग्रह का महत्व है, जैसा कि प्रथम संस्करण की प्रवेशिका में बच्चन ने कहा भी है -

"सच पूछा जाय तो जो 'धार के इधर उधर' है वह धार को बहुत से अंशों तक प्रभावित करता है। धार से बहुत अंशो तक प्रभावित भी होता है। कौन कह सकेगा कि धार ने किनारों को कितना रूप दिया है, किनारों ने धार को कितनी दिशा दी है।" [१]

---

१ बच्चन रचनावली भाग -२ - पृ०सं० १३३

(१६) बुद्ध और नाचघर -

'बुद्ध और नाचघर' हरिवंशराय बच्चन का विभिन्न विषयों, परिस्थितियों, विभिन्न मनः स्थितियों तथा विभन्न दृष्टिकोणों से लिखी गई कविताओं का संग्रह है। इसकी एक लम्बी और मुक्त छन्द की कविता 'बुद्ध और नाचघर' नाम से इस कृति का नाम 'बुद्ध और नाचघर' रखा गया। इस संग्रह की किसी भी कविता में कथ्य और विमर्श का तारतम्य ढूंढ़ना व्यर्थ है क्योंकि सब कविताओं का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। यदि किन्हीं कविताओं में किसी प्रकार का साम्य परिदृष्ट होता है तो वह कवि का अभिप्रेत न होकर संयोग मात्र है।

(१७) त्रिभंगिमा -

'आरती और अंगारे' तथा 'बुद्ध और नाचघर' के प्राकशन के उपरान्त १९५८-६० के काल खण्ड में बच्चन द्वारा विरचित रचनायें तीन धाराओं में प्रवाहित हुई हैं। इनमें से कुछ छान्दसिक रचनाऐं है, कुछ मूल छन्द रचनाऐं तथा कुछ लोक धुनों पर आधारित रचनाऐं हैं। इन तीनों धाराओं की रचनाओं को एक साथ प्रकाशित किये जाने को ही कदाचित बच्चन ने इस कृति का नाम 'त्रिभंगिमा' रखा। इस युग तक आते-आते बच्चन की सृजनधर्मिता का घट करीब-करीब रीता हो चुका था। उन्होंने सृजनधर्मी ऊर्जा और उष्मा का सहारा लेकर उत्तर प्रदेश की लोक धुनों के शरासन की शिंजिनी पर अपनी संवेदनाओं के तीर रखकर उनका संधान किया। उनकी छन्दोबद्ध रचनाओं में भी बच्चन के संवेदना का संसार पूरी गरिमा के साथ उपस्थित है। मुक्त छन्द रचनाओं में कवि ने इस रूप में सफलता पायी है कि कतिपय छन्द मुक्त कवियों की भांति लय के अनुशासन को न तोड़ते हुए अपनी सोच व संवदेना को सम्यक् दिशा दे सके हैं।

(१८) चार खेमें चौंसठ खूंटे - (६२-६४)

बच्चन ने अपनी जीवन यात्रा में काल प्रवाह के साथ जिन परिस्थितियों को भोगा था, उनका प्रभाव उनकी रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। जीवन के विविध युगों - चपल यौवन की मादकता में 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' के दिन, जीवन संगिनी श्यामा की मृत्यु के बाद पोर-पोर पीड़ा से भीगी मनोदशा में विरचित 'निशा निमन्त्रण', 'आकुल अन्तर' और 'एकान्त संगीत' के दिन, फिर तेजी बच्चन के जीवन में आने के बाद 'सतरंगिणी', मिलन यामिनी' के दिन, शोध कार्य के लिये विदेश प्रवास के दौरान 'प्रणय पत्रिका', 'आरती और अंगारे' के दिन, 'धार के इधर उधर' के दिन, उनकी रचनाओं में मूल्यवान धरोहर के रूप में सुरक्षित हैं। अपनी अनुभूतियों को तीन भंगिमाओं में प्रस्तुत करने के बाद, बदले हुए देशकाल परिस्थिति में तथा उम्र ने जहां पुरानी इमारतों के मलबे से चार खेमें लगाये वहां जमीन की दगाबाजी से आशंकित होकर बच्चन को आकाश में भी ६४ खूंटे गाड़ने पड़े। बच्चन के इसी उपक्रम का परिणाम है 'चार खेमे चौंसठ खूंटे।'

(१६) दो चट्टाने -

'दो चट्टाने' 'बच्चन' की १६६२ और १६६४ के बीच की रचनाओं का संग्रह है। भारत के लिये यह काल खण्ड पराभव से परिपूर्ण था। चीन के दुर्दान्त आक्रमण और भारत की विवशता से समस्त राष्ट्र मर्माहत था, ऐसे में कवि का संवेदनशील अन्तर व्यथाक्रान्त हुआ हो तो इसमें आश्चर्य क्या ? संकटमोचन के रूप में प्रसद्धि हनुमान की याद आना स्वाभाविक ही था। सम्भवतः इसीलिये इस रचना का नाम हनुमान के नाम पर सर्वप्रथम 'सिसिफ़स बरक्स हनुमान' रखा गया।

प्रारम्भ की 'सूर समर करनी करहिं', 'बहुरि वन्दि, खल गन सति भाये', 'उघरहि अंत न होइ निवाहू', तथा 'मूल्य चुकाने वाला' आदि चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया मे लिखी गई हैं। उसी मानसिकता में तत्कालीन राजनीति, राजनेताओं तथा राष्ट्रीय स्तर पर विविध क्रिया कलापों पर और कहीं बाढ़ पीड़ितों, युगीन विसंगतियों, हताशा और निराशा को प्रकट करने वाली भी रचनायें है। बच्चन की यह कृति छन्द मुक्त कविता के रूप में सृजित हुई है, किन्तु सर्वत्र लय का अनुशासन सुरक्षित है।

(२०) कटती प्रतिमाओं की आवाज

१९६७-६८ के बीच लिखी गई बच्चन की रचनाऐं इस संग्रह में संकलित हैं। इस मुकाम तक बच्चन इस उम्र मे प्रवेश कर गये थे जिसे बुढ़ापे की आयु कहा जाता है। अब तक उनके जीवन स्तर में और देशकाल परिस्थितियों में भी बड़ा अन्तर आ चुका था। कवि कर्म आयु जन्य अनुभूतियों तथा देशकाल परिस्थितियों से प्रभावित होता है। तारुण्य के रागाकांक्षी मद विह्वल प्रवाह में तरंगायित बच्चन पीड़ा के कई मुकामों को पार करके, दुष्प्राप्य उपलब्धियों से विभोर होकर शनैः शनैः जिस परिवेश में प्रवेश कर गये, उसमें वाह्य परिदृश्यों के प्रति दृष्टि और वाह्य परिदृश्यों की सृष्टि में प्रचुर परिवर्तन हो चुका था। जो संसार युवा बच्चन को राग-रंजित कर देता था, इस मुकाम पर वो वितृष्णा उत्पन्न कर रहा था।

(२१) जाल समेटा - १६६८-७२

'जाल समेटा' प्रकाशित होने के मुहूर्त पर बच्चन का अपने पाठको से निवेदन था कि धीवर अथवा माझी का सम्बन्ध बहुत पुराना है, यहाँ तक कि बुद्ध और ईसा तक ने उसका सहारा लिया है। जब यह समझ कर कि मछलियाँ पकड़ने का कार्य पूरा हो चुका है और अब इसके लिये समय भी नहीं शेष है तो धीवर अपने जाल को समेटने लगता है। धीवरों की भाषा में इसी को 'जाल समेटा' कहते हैं। किसी कवि के लिये प्रयुक्त 'जाल समेटा' का आशय यह होगा कि वह अपनी रचना धर्मिता सम्पन्न कर चुका है और अब वह कवि कर्म से उपराम (हटना) ले रहा है। 'जाल समेटा' की भूमिका में बच्चन ने लिखा है कि-

"उनकी काव्य यात्रा का आरम्भ 'तेरा हार' से और परिसमाप्ति 'जाल समेटा' से हो रही है। हार को उन्होंने मोह का और जाल को मोह भंग का प्रतीक बताया, तो भी काव्य जगत से अपने विघटन को पहचानने के अनन्तर भी काव्य के प्रति अपनी अभिरुचि को समाप्त नहीं कर सके। विघटन में अन्तर्निविष्ट घट अर्थात् गोलाकार परिधि को संकेतित करते हुए उन्होंने कहा है - "परिपूर्णता वहीं मिली है ठीक जहाँ से शुरू हुई थी।" [१]

उन्होंने शेक्सपीयर के शब्दों को भी उद्घृत किया और यह कहना चाहा कि काव्य की यात्रा परिधि की यात्रा है जो कभी समाप्त नहीं होती। **The wheel is come ful circle** एक वृत्त पूर्ण हुआ - सांप ने मुंह से पूंछ पकड़ ली।" [२]

जाल समेटा की कविताऐं बच्चन ने अकविता को समर्पित की यह कहते हुए - कि 'उस कविता को जिसमें कविता लय हो जाती है।' मुक्त छन्द कविताओं में विविध शीर्षकों के अन्तर्गत विविध विषयों को सोच और संवेदना के धरातल पर रूपायित करने का प्रयास किया गया है। इस उपक्रम में कवि का अध्ययन तथा अनुभव, शील, व्यक्तित्व स्पष्टतः विवक्षित है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग -३ - पृ०सं० ३७८
२ बच्चन रचनावली भाग -३ - पृ०सं० ३७८

(२२) नई से नई पुरानी से पुरानी - १९७३

१९७३ में प्रकाशित 'जाल समेटा' में ऐसे संकेत थे कि कदाचित बच्चन की काव्य यात्रा की यह परिसमाप्ति है। बहुत दिनों तक उन्होंने कोई कविता लिखी नहीं। वस्तुतः कविता रचित करने अथवा कविता न रचित करने के संकल्पों के आधार पर कवि संसार नहीं चलता। कवि हृदय से कविता स्वयं ही उमड़कर निकलती है। इस तथ्य की स्वीकारोक्ति बच्चन ने की भी है -

"मैंने बहुत दिनों तक कोई कविता नहीं लिखी। कालान्तर में फिर कुछ ऐसा घटा जिसमें मैं कवितानुमा फिर कुछ लिखने को विवश हुआ। एक अनुभूति हुई कि जैसे इरादतन कविता नहीं लिखी जा सकती उसी तरह इरादतन कविता लिखना बन्द भी नहीं किया जा सकता।" [१]

इस प्रकार बच्चन का काव्य लेखन समाप्त नहीं हुआ, वे जब-तब लिखते रहे। यद्यपि उनकी ये कविताऐं। १९८३ में बच्चन रचनावली में प्रकाशित हो चुकी थीं, किन्तु बच्चन ने इन रचनाओं को आम पाठकों तक पहुँचाने के लिये अलग से पुस्तक के रूप में प्रकाशित करवाया।

इस कृति में बच्चन की इन रचनाओं के अतिरिक्त इनकी दो पुरानी कविताऐं भी प्रकाशित हैं। नई कविताओं में हंस प्रतीक के माध्यम से कवि ने अपना सारगर्भित चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास कया है। अपने भोगे यथार्थ पर आधारित उनका चिन्तन व्यापक और सारगर्भित है।

---

१ 'नई से नई पुरान से पुरानी' कृति में बच्चन अपने पाठको से।

(ख) काव्येतर कृतित्त्व का संचित परिचय

बच्चन की काव्येतर रचनाओं के अन्तर्गत उनकी आत्मकथा, निबन्ध, पत्र, डायरी, कहानियां, समीक्षा इत्यादि आते हैं। जिनका क्रमशः परिचय इस प्रकार है -

(१) आत्मकथा -

बच्चन ने अपने जीवन के विविध पहलुओं पर चर्चा करते हुए खुले मन से पूर्ण ईमानदारी के साथ आत्मकथा को चार भागों में प्रस्तुत किया है - 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण', 'फिर बसेरे से दूर', 'दशद्वार से सोपान तक'। यह आत्मकथा एक सशक्त महाकाव्यीय गुणों तथा प्रभावों से समलंकृत है, जो उनके जीवन और कविता की अन्तर्धारा का वृतान्त ही नहीं बल्कि छायावादी युग के बाद के साहित्यिक परिदृश्य का विवेचन भी है। निस्संदेह यह आत्मकथा हिन्दी साहित्य के सफर का मील का पत्थर है। बच्चन को आत्मकथा के लिये भारतीय साहित्य के सर्वोच्च पुरस्कार 'सरस्वती सम्मान' से सम्मानित भी किया गया है।

डाक्टर धर्मवीर भारती के अनुसार -

"डा० धर्मवीर भारती ने इसे हिन्दी के हजार वर्षों के इतिहास में ऐसी पहली घटना बताया है, जब अपने बारे में सब कुछ इतनी बेवाकी, साहस और सद्भावना से कह दिया गया है।"

<u>डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार</u> -

"इसमें केवल बच्चन का परिवार और उनका व्यक्तित्व ही नहीं उभरा है बल्कि उनके साथ समूचा काल और क्षेत्र भी अत्यन्त जीवन्त रूप में उभर कर सामने आ गये हैं।" [1]

<u>सुमित्रा नन्दन पन्त के शब्दों में</u> -

"इस आत्मकथा में बच्चन का पारदर्शी व्यक्तित्व अधिक गहरे रंगों में उभरा है।" [2]

<u>रामाधारी सिंह 'दिनकर' के अनुसार</u> -

"हिन्दी प्रकाशनों में इस आत्मकथा का अत्यन्त ऊँचा स्थान है।" [3]

---

१ 'दशद्वार से सोपान तक' - रचना की पृष्ठ भूमि से उद्धृत
२ 'दशद्वार से सोपान तक' - रचना की पृष्ठ भूमि से उद्धृत
३ 'दशद्वार से सोपान तक' - रचना की पृष्ठ भूमि से उद्धृत

डा० शिव मंगल सिंह 'सुमन' की राय -

"ऐसी अभिव्यक्तियां नई पीढ़ी के लिये पाथेय बन सकेगी, इसी में उनकी सार्थकता भी है।"

नरेन्द्र शर्मा - "यह बच्चन के आत्म कथात्मक साहित्य की परिणिति है।" [1]

---

१ 'दशद्वार से सोपान तक' - रचना की पृष्ठभूमि से

(१) क्या भूलूँ क्या याद करूँ -

१६६६ में लिखी गई प्रस्तुत रचना में बच्चन जी ने घर के सभी बुजुर्गों की मनोदशा, परिवार में होने वाले रूढ़िगत निर्णय, समाज व पड़ोसियों से जुड़ी घटनाऐं, अपने घरेलू जीवन एवं उनका घर के लोगों से सामीप्य, सभी का वर्णन बखूबी किया है। उन्होंने अपनी स्मृति और रचनाधर्मिता के माध्यम से अपने जीवन काल में हुए रोचक प्रसंगों का वर्णन भी किया है। बच्चन बचपन में इलाहाबाद में रहे। इसके पश्चात् उनका कुछ समय ललितपुर में बीता। उन्होंने बुन्देलखण्ड की होली की चर्चा अपनी इस कृति में की है। बच्चन का विवाह अल्पायु में श्यामा के साथ हो गया था। उनके साथ बिताये दिन, उनकी मत्यु पर हुए जीवन के एकाकीपन व निराशा के क्षणों को इस रचना में उतारा है। उन्होंने श्यामा के जीवन काल व उनके पश्चात् के घटनाक्रम के समय में 'मधुशाला' एवं 'मधुवाला' कृतियों की रचना की थी। बच्चन ने 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' की पृष्ठभूमि में अपने पाठकों से यह बात कही है -

"मुझे कई वर्षो से लग रहा था कि जब तक मैं अपने अन्तर में निरन्तर उठती स्मृतियों को चिह्नित न कर डालूंगा तब तक मेरा मन शान्त नहीं होगा।"[1]

उन्होंने कहा है -

"इसको लिखने का एक मात्र लक्ष्य घरेलू और निजी रहा है। इसके द्वारा सेवा और आत्मश्लाघा का कोई विचार मेरे मन में नहीं है। ऐसा ध्येय मेरी क्षमता से परे है। मैं चाहता हूँ कि लोग मुझे मेरे सरल स्वाभाविक और साधारण रूप में देख सकें - सहज, निष्प्रयास प्रस्तुत क्योंकि मुझे अपना ही तो चित्रण करना है। मैं अपने गुण, दोष, जग जीवन के सम्मुख रखने जा रहा हूँ, पर ऐसी स्वाभाविक शैली में जो लोकशील से मर्यदित हो। यदि मेरा जन्म उन जातियों में हुआ होता जो आज भी प्राकृतिक नियमों की मूलभूत स्वच्छन्दता का सुखद उपयोग करती हैं तो आपको विश्वास दिलाता हूँ कि बड़े आनन्द से अपने आपको आपाद मस्तष्क एक दम नग्न उपस्थित कर देता। इस प्रकार पाठकों में स्वयं अपनी पुस्तक का विषय हूँ और मैं कोई वजह नहीं देखता कि आप अपनी फुरसत की घड़ियां ऐसे नगण्य और निरर्थक विषय पर खर्च करें।"[2]

---

१ 'क्या भूलूँ क्या याद करू' - बच्चन - अपने पाठकों से (प्रथम संस्करण)
२ 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' - पृष्टभूमि से - अपने पाठकों से (प्रथम संस्करण)

(२) नीड़ का निर्माण फिर - १९७०

यह लेखक की आत्मकथा का द्वितीय सोपान है। जब वह 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में अपने बचपन से लेकर प्रथम परिणय एवं अपने साथी से चिर विछोह की कथा लिखते-लिखते एकाकी हो चला था और फिर धीरे-धीरे उसके दिल में आशा की एक किरण फूटी, फलस्वरूप तेजी बच्चन से परिणय सूत्र में बंधने की घटना, उससे पूर्व व बाद की अभिव्यक्ति उन्होंने इस कृति में की है। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट होता है। लेखक ने अनुभव किया कि निराशा मनुष्य को आत्म केन्द्रित अथवा अपने में संकुचित कर देती है। जीवन अनमोल है, इसे यूँ ही छोड़ देना ठीक नहीं, इसको फिर से सजाना-संवारना चाहिए, क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। व्यक्ति भी यदि परिस्थितियों के अनुसार अपने में बदलाव न लाये तो उसके जीवन का अन्त अवश्यम्भावी है। अतः तेजी बच्चन उनके जीवन में प्रेरणा बनकर आयीं और उसी का प्रतिफल है कि आज वे उच्चकोटि के साहित्यकार हैं।

बच्चन ने लिखा है - "मैंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि इसी बरेली में पाँच वर्ष बाद तेजी से मेरी सगाई होगी और मेरे 'नीड़ का निर्माण फिर' होगा। अदृश्य कहीं से देख रहा था कि बरेली की उस यात्रा मे ही मैं अपने नीड़ का पहला तिनका रख आया था।" [1]

बच्चन ने इस कृति में खुलकर अन्तर्मन की बात को पाठकों के सामने रखा है -

"कुण्ठायें सबसे अधिक दमित यौन भावनाओं से जन्म लेती हैं। मुझे अपने यौवनारंभ में जैसा संसर्ग मिल गया था उसे मुझे अपनी यौन भावनाओं को दमित करने को बाध्य न होना पड़ा था। शायद इसी का बदला लेने को या इसका परिस्कार करने को आत्म संयम मेरे प्रथम परिणित जीवन का आवश्यक अंग बना दिया गया। ..... इनके तनाव मे कविता मेरी अभिव्यक्ति का माध्यम न बनती तो मैं निश्चित ही टूट या भटक जाता। .... अब मैं ऐसे प्यार से प्यास बुझाना चाहता था जिसका आदि स्रोत मातृकरुणा में हो। अदृश्य ने तेजी से मेरी वह कामना पूर्ण करवा दी।" [2]

सुख, दुख, शोक, चिन्तायें प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आया करती हैं और वह उन्हें झेलता हुआ, कुछ टूटता हुआ बनता है। कलाकार इन्हीं में आशावादी किरणों को देख लेता है।

---

१ 'नीड़ का निर्माण फिर' - पृ०सं० - ५१
२ 'नीड़ का निर्माण फिर' - पृ०सं० २६६

(३) बसेरे से दूर - १६७७

यह कृति 'बच्चन' ने अपने छोटे पुत्र अजिताभ व बहू रमोला को समर्पित की है। इसमें लेखक ने अध्यापन का व पी-एच०डी० की उपाधि अर्जित करने के लिये तेजी बच्चन द्वारा किये गये प्रयास, तेजी से दूर रहकर इग्लैंड की कैंम्ब्रिज आक्सफर्ड युनिवार्सिटी में लम्बे समय तक प्रवास, परिवार की आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन, वियोग के क्षणों में अपनी मनोदशा का चित्रण विस्तार से किया है। अपनी जन्म भूमि से दूर रहने के कारण ही उन्होंने अपनी कृति का नाम 'बसेरे से दूर' रखा है। बच्चन ने अध्यापन कार्य अपने विद्यार्थी जीवन काल से ही शुरू कर दिया थाा क्योंकि वह आर्थिक विपन्नता के दौर से गुजर रहे थे। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा है -

"मुझमें अध्यापन का बीजारोपण निःसंदेह ही उन ट्यूशनों के समय हुआ होगा जब मैंने अपने परिवार की आर्थिक विपन्नता में विद्यार्थी जीवन की शुरूआत की थी ... जब पहली ट्यूशन में मुझे पहली बार 'मास्टर साहब' कहकर सम्बोधित किया गया था और उस सम्बोधन से मुझे अचानक रोमप्रहर्षक अनुभूति हुई थी कि आज मैं एक पीढ़ी पार कर गया हूँ। विद्यार्थी से अध्यापक हो गया हूँ" [1]

अध्यापन कार्य करते हुए बच्चन ने कवि ईट्स पर शोध प्रारम्भ कर दिया था। कवि ईट्स के साहित्य के प्रति लेखक की विशेष रुचि थी, कारण-कि वे अपने समकालीन कवियों से बहुत भिन्न थे और इस भिन्नता को लाने में भारतीय संस्कृति और साहित्य ने कोई न कोई भूमिका अवश्य की होगी। इस अपूर्ण कार्य को पूरा करने के लिये आर्थिक स्थिति का सामना करना स्वाभाविक था। लेखक के जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा गरीबी में बीता था, अतः विदेश जाने के लिये खर्च इकट्ठा करने की बात जब आई तो तेजी बच्चन ने ही उनको तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू से मिलने को कहा जिसके फलस्वरूप वे विदेश जाकर शोध कार्य को अन्तिम रूप देने में सफल हो सके। नेहरू परिवार से तेजी बच्चन के पुराने सम्बन्ध थे। बच्चन जिस समय विदेश गये अमिताभ और अजिताभ बहुत छोटे थे। अतः उन्होंने परिवार से दूर रह कर अपनी विरह व्यथा का चित्रण इस कृति में किया है। साहित्यकारों ने 'बसेरे से दूर' कृति के बारे में अपनी समीक्षा प्रस्तुत करते हुए कहा है -

विष्णुकान्त शास्त्री

---

१ 'बसेरे से दूर' - पृ०सं० १२

"बसेरे से दूर आदि से अन्त तक पढ़ता गया। आपकी कर्मठ, बौद्धिकता का जो रूप उसमें उजागर हुआ है, वह ढीले ढाले स्वप्न विलासी स्वच्छन्दतावादी कवियों से आपको बिल्कुल पृथक कर देता है। भावुकता जीवन में प्रेरणा के रूप में कैसे सक्रिय हो सकती है, इसे आपने अपनी-जीवनी के इस खण्ड में मूर्त कर दिया है।"

शिवमंगल सिंह 'सुमन' -

'बच्चन' जी के 'बसेरे से दूर' में संघर्ष के एक दौर की समाप्ति की झलक मिली, उनके ज्वलन्त जीवन की ज्योति रेखा सी। ऐसी अभिव्यक्तियाँ नई पीढ़ी के लिये पाथेय बन सकेंगी, इस पर उनकी सार्थकता भी है। साधना के इन सोपानों के प्रति मेरा नमन ....।"[१]

---

१ 'बसेरे से दूर' - कृति की पृष्ठभूमि से

(४) दश द्वार से सोपान तक - १६८३-८५

बच्चन की यह कृति समस्त परिवार को समर्पित है। यह उनकी आत्मकथा की अंतिम कालजयी रचना है। दशद्वार और सोपान बच्चन जी के दो घरों के नाम हैं। 'दशद्वार' इलाहाबाद तथा 'सोपान' दिल्ली में स्थित है। इलाहाबाद में किराये का मकान था, जिसके दरवाजे, रोशनदान खिड़कियाँ सब मिलाकर दस-दस खुली हवादार जगह थीं, जिससे उसका नाम 'दशद्वार' रखा गया। 'सोपान' में तीन मंजिले हैं जिनको नीचे से ऊपर तक एक ही सीढ़ी जोड़ती है। सोपान का शब्दिक अर्थ सीढ़ी है अतः इस मकान का नाम 'सोपान' रखा गया। लेखक ने इलाहाबाद से दिल्ली तक की जीवन यात्रा का वर्णन इस कृति में किया है। इसी कारण इस रचना का नाम 'दशद्वार से सोपान' पड़ा। इस कृति की साहित्यिक श्रेष्ठता के कारण ही बच्चन को हिन्दी के सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार 'सरस्वती सम्मान' से समलंकृत किया गया।

बच्चन ने १६५६ में इलाहाबाद स्थित निवास को छोड़ा था। वे दिल्ली विदेश मन्त्रालय में हिन्दी विशेषाधिकारी के पद पर दस वर्ष तक रहे, छः वर्ष तक राज्यसभा के सदस्य रहे, दो वर्ष तक मुम्बई में अपने बेटों के पास पुनः चार वर्ष दिल्ली, फिर मुम्बई अन्ततोंगत्वा सन् १६८३ में नवगृह 'सोपान' में प्रवेश किया।

इस सत्ताइस वर्षो के लम्बे अन्तराल में जो कुछ उनके स्मृति पटल पर अंकित हुआ उन्होंने 'दशद्वार से सोपान तक' कृति में उतार दिया। बच्चन ने लिखा है -

"इन सत्ताइस वर्षों में कितना पानी मेरी सुधियों की सरिता में बह चुका है। निश्चय ही, उसके चेतन और अवचेतन तटों पर अपने बहुविधि प्रवाह की कितनी, कितनी निशानियां छोड़ते हुए - कहीं चटक, कहीं फीकी, कहीं चमकीली, कहीं धुंधली, कहीं साफ-सुथरी, कहीं धूमिल। बेटों, बहुओं, पोते पोतियों के अपने भरे पूरे परिवार से दूर बहुत दूर अकेले, एकान्त में 'सोपान' के एक कक्ष में बैठे हुए अक्सर बीते दिनों की ये निशानियां बहती-तिरती मेरे दिमाग में आ उभरी हैं और मैं कल्पना के सहारे उस यात्रा पर निकल पड़ा हूँ जो कुछ भी समय से पहले कितनी स्थूल, कितनी वास्तविक, कितनी सत्य थी।"[1]

---

१. दशद्वार से सोपान तक - बच्चन - आपने पाठकों से

(ii) निबन्ध में

(अ) नये पुराने झरोखें

सन् १९३२ से १९६१ के काल खण्ड में बच्चन ने रेडियों और पत्र पत्रिकाओं के लिये वर्ताए लिखी थीं, जो निबन्ध संग्रह के रूप में 'नये पुराने झरोखें' शीर्षक से प्रकाशित हुई। लेखकीय उद्‌बोधन में बच्चन ने स्वयं रहस्योघाटित किया है - "अपने गद्य-लेखन के विषय में आपको कुछ रोचक बातें बताना चाहता हूँ। आज तो लोग मुझे प्रायः कवि के रूप में ही जानते हैं, पर एक समय में सोचता था कि मैं गद्य-लेखक ही बनूंगा और अपनी पहली रचना गद्य की ही प्रकाशित करना चाहता था। मुझे याद है कि अपने विद्यार्थी जीवन में मुझे हिन्दी निबन्धों पर अपनी 'कक्ष में' सबसे अधिक नम्बर मिला करते थे।

बच्चन ने स्वतः ही यह भी स्वीकार किया है कि - "गद्य लिखने की प्रेरणा मुझे मुख्यतः रेडियों के कारण मिली। लखनऊ का रेडियो स्टेशन १९३६ में स्थापित हुआ। वहां से कई बार विभिन्न विषयों पर वार्ताएं प्रसारित करने के निमन्त्रण आये, यह क्रम और बढ़ा जब १९५९ में इलाहाबाद में भी रेडियों स्टेशन खुल गया। [1]

इस प्रकार गद्य के प्रति आग्रही दृष्टि रखते हुए भी जीवनीय विसंगतियों कुण्ठाओं, न्यूनताओं, आशाओं तथा उमर खैय्याम के प्रभाव ने उन्हें काव्य सृजन से जोड़ दिया। बच्चन को जब भी गद्य लेखन का अवसर मिला तो उनकी लेखनी ने सिद्ध कर दिया कि वे गद्य के क्षेत्र के भी अतिरथी योद्धा हैं। 'नये पुराने झरोखें' निबन्ध संग्रह में साहित्यिक विभूति पुरुषों तथा विविध सामयिक तथा विचारणीय विषयों पर बच्चन ने अपने विचार और संवेदात्मक अनुभूतियां व्यक्त की हैं। इस उपक्रम में नवीन जी : एक संस्मरण, कविवर नवीन जी, यह मतवाला निराला, आचार्य चतुर सेन शास्त्री : एक संस्मरण, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' : एक संस्मरण, प्रेम चन्द : एक संस्मरण, किशोरी लाल गोस्वामी : एक सप्ताह की भेंट, समकालीन हिन्दी कविता की गतिविधि, आधुनिक कविता में बुद्ध, आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, गीत काव्य की परम्परा-परिभाषा और तत्व, मेरा रचना-काल, मेरी कविता के सोपान, मैं और मेरी मधुशाला, मेरी रचना प्रक्रिया, अनुवाद की समस्या, कवि-सम्मेलनों के कुछ कड़वे-मीठे अनुभव, अंग्रेजी के बीच दो साल, कैम्ब्रिज में विद्यार्थी जीवन, मेरी स्मणीय जलयान यात्रा, बैल्जियम का अन्तर्राष्ट्रीय काव्य समारोह, आंग्ल-आयरी

---

१ बच्चन रचनावली भाग-६ पृ०सं० १३३

साहित्य, बिल्यिम बटलर ईट्स, जेम्स, ज्वाइस और यूलीसीज, सरवैण्टीज और डान क्विक जोट, प्रेम चन्द और गोदान, पंत और 'क्ला और बूढ़ा चाँद', हमारा राष्ट्रीय गीत, गाँधी चर्चा, भारत कोकिला सरोजनी नायडू, बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डनः एक संस्मरण, अमर नाथ झा, कश्मीर यात्रा : एक संस्मरण तथा कर्ण शीर्षक निबन्ध 'नये पुराने झरोखे' निबन्ध संग्रह में संकलित हैं।

(ब) टूटी-छूटी कड़ियां

सन् १९६३ से १९७३ के बीच बच्चन द्वारा विरचित इन गद्य कृतियों को बच्चन ने विशुद्ध निबन्ध संग्रह नहीं माना। उनके ही शब्दों में - "आज अपनी एक गद्य कृति अपके सामने रख रहा हूँ, इसे विशुद्ध निबन्ध-संग्रह तो नहीं कह सकता। इसमें कुछ निबन्ध हैं, कुछ वार्ताएं, कुछ भाषण, कुछ पत्र परिचर्यायें, कुछ साक्षात्कार और कुछ संस्मरण है। पिछले दस वर्षों में लिखित विविध गद्य में जो कुछ मैंने अपने पाठकों के लिये रुचिकर समझा है उसे जोड़-बटोर इस संग्रह में रख दिया है। इस प्रकार इसका नाम 'टूटी-छूटी कड़ियां' शायद सार्थक समझा जायेगा, जबकि कविता से विदा लेने के बाद मैं गद्य से भी छुट्टी लेने की तैयारी में हूँ इसे आप मेरे पिछले निबन्ध संग्रह का पूरक मान सकते है, जो आज से दस वर्ष पहले 'नये पुराने झरोखे' के नाम से प्रकाशित हुआ था।" [१]

इस संग्रह में शिकायत है - बच्चन की बच्चन से, बृज भाषा की मेरी प्रिय कविता, कविता पाठ की कला, हिन्दी कविता की प्रारम्भिक मंजिलें, आधुनिकता और हिन्दी कविता, साहित्यिक शोध की समस्यायें, गालिब की जीवनी, गालिब की कविता, सियाराम शरण गुप्त : एक संस्मरण, पंत के काव्य में राष्ट्रीय भावना, पांच देशों में दो मास एक सप्ताह, भाषण, दीक्षांत भाषण, चीनी आक्रमण, झण्डे का गीत फिर क्यों ?, पत्र परिचर्चा : एक, पत्र परिचर्चा : दो, पत्र परिचर्चा : तीन, पत्र परिचर्चा : चार, पत्र परिचर्चा : पांच, पत्र परिचर्चा : छः, पत्र परिचर्चा : सात, पत्र परिचर्चा : आठ, पत्र परिचर्चा : नौ, पत्र परिचर्चा : दस, साक्षात्कार : एक तथा साक्षात्कार : दो रचनायें संग्रहित हैं।

---

१ टूटी-छूटी कड़ियां - बच्चन - 'अपने पाठकों से'

(iii) पत्र

बच्चन के जीवन का विस्तृत धरातल है। उनसे उनके परिजनों, साहित्यिक मित्रों, गुरुजनों, श्रद्धेयजनों, परिचितों के अतिरिक्त ऐसे अनेक व्यक्ति थे जो उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में नहीं थे, किन्तु जिन्होंने उन्हें कवि सम्मेलनों में सुना था, उनकी कृतियों को पढ़ा था तथा उनके बारे में चर्चायें सुनी थी, इन लोगों ने समय-समय पर पत्र भी लिखे, जिनका बच्चन यथा शक्य उत्तर देने की भी चेष्टा करते थे, यद्यपि ऐसे पत्रों की संख्या अगणित है। उनके द्वारा लिखे गये समस्त पत्रों का संकलन सम्भव नहीं है तथापि डा० जीवन प्रकाश जोशी, निरंकार देव सेवक तथा डा० चन्द्र देव सिंह ने उनके पत्रों का न केवल संग्रह किया है; प्रत्युत उन्हें अधोप्रस्तुत शीर्षकों से प्रकाशित भी कराया है -

(अ) बच्चन पत्रों में (संम्पादक - डा० जीवन प्रकाश जोशी)

(ब) बच्चन के पत्र (संम्पादक - निरंकार देव सेवक)

(स) बच्चन के विशिष्ट पत्र (संम्पादक - डा० चन्द्र देव सिंह)

(द) पाती फिर आई (संम्पादक - डा० जीवन प्रकाश जोशी)

उपर्युक्त संग्रहों के माध्यम से बच्चन के विविध पत्र प्रकाश में आ सके हैं। इनमें से अधिकाशतः उनको लिखे गये पत्रों के उत्तर के रूप में, कुछ प्रियजनों को उन्होंने स्वतः पत्र लिखे हैं जिनमें कुशल-क्षेम के अतिरिक्त साहित्यिक रचनाधर्मिता के प्रति जिज्ञासायें है, व्यक्तिगत भावाकुल स्नेह प्रवाह है तथा वैचारिक एवं संवेदनात्मक परिपार्श्वों का अतलस्पर्शी प्रस्तुतीकरण है। इन पत्रों में कहीं-कहीं उनका स्वाभाविक सौंदर्य रूप अनायास पत्रार्पित हुआ है। प्रत्यक्ष सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के स्थान पर बहुधा इन स्थलों पर सौंदर्याभास का प्रत्यक्षीकरण हुआ है।

(अ) बच्चन पत्रों में (संम्पादक - डा० जीवन प्रकाश जोशी)

डॉ० जीवन प्रकाश जोशी ने बच्चन के पत्र व्यवहार पर गवेषणात्मक अनुसंधान कार्य किया अपने समकालीन साहित्यिकारों तथा परिचितों को लिखे गये पत्रों को खोज कर उन्हें इस संकलन में प्रकाशित किया। साहित्यकार अपनी प्रातिभ मनीषा के कारण सामान्य जीवन प्रक्रिया में भी कुछ विशिष्ट परिलक्षित होता है। बच्चन के सामान्य पत्राचार में भी उनका वैशिष्ट्य और सौन्दर्य-बोध विवक्षित होता है। उनके कतिपय पत्र उदाहारणर्थ प्रस्तुत है-

प्रयाग

५-१-३१

सुहृद शिवमंगल सिंह सुमन,

सप्रेम हृदयालिंगन !

आपका कौसानी यात्रा का वृत्तान्त लिये पत्र प्राप्त हुआ पंत जी का जन्म स्थल पंत जैसा ही यदि सुन्दर है तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? हिम मंडित पर्वत श्रृंखलाओं के पाद प्रदेश न केवल योग साधना के लिये बल्कि साहित्य साधाना के लिये भी अति उपयुक्त हैं। गो कि चाहते हुए भी मैं अभी तक कौसानी के दर्शन नहीं कर सका। आशा है शीघ्र ही इलाहाबाद आ कर कौसानी यात्रा के अपने संस्मरण रुबरू होकर सुनाओगे।

प्रतीक्षा में

बच्चन

एक उदाहरण के लिये एक अन्य पत्र दृष्टव्य है -

७ जून १६३६

प्रयाग

श्रद्धेय पंत जी,

प्रणाम !

आपकी पाण्डिचेरी यात्रा आशा से अधिक लम्बी हो गयी है। मेरी कुटिया अपकी प्रतीक्षा कर रही है। लगता है महार्षि अरविंद के आश्रम में आप साधु बनकर ही मार्नेगे वैसे तो जब मैंने आपको पहली बार देखा था इलाहाबाद की गलियों में तो आपके शारीरिक सौन्दर्य को निहारता रह गया था और मन में सोचा था कि क्या कोई इससे भी अधिक सुन्दर हो सकता है।

आपके वाह्य सौन्दर्य के अनुकूल ही आपका आन्तरिक सौन्दर्य भी होगा ही। फिर पाण्डिचेरी में योग साधना से और किस उपलब्धि का प्रयास कर रहे हैं आप।

दुःखद सूचना है कि मेरे संदूक में आपके गर्म कपड़ों तथा पाण्डुलिपियों को दीमकों ने चट कर डाला है। आपको इसका कितना दुःख होगा मैं नहीं जानता किन्तु यह जरूर जानता हूँ कि मुझे इसका बहुत दुःख है।

दर्शनार्थी

बच्चन

(ब) बच्चन के पत्र (सम्पादक - निरंकार देव सेवक)

निरंकार देव सेवक ने भी बच्चन के पत्रों की खोज-बीन की और उन्हें 'बच्चन के पत्र' शीर्षक से प्रकाशित भी कराया। निरंकार देव सेवक को यह पत्र अधिकांशतः बच्चन के प्रशंको के पास से प्राप्त हुए थे, जिन्होंने ने बच्चन को श्रद्धा विभोर पत्र लिखे थे और बच्चन ने भी उन्हें संवेदनशील उत्तर दिये थे। अधोलिखित पत्र दृष्टव्य है।

प्रयाग

५ मई १९४५

साहित्य प्रेमी सुधा जी,

सप्रेम नमस्कार !

आपने अपने पत्र में मेरी रचनाओं को इतना महत्त्व दिया है कि वे किसी मनुष्य की बजाय किसी गंधर्व के द्वारा विरचित प्रतीत होती हैं। सुधा जी मैं एक संवेदनशील कवि हूँ अपने हर्ष विषाद तथा राग-द्वेष को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने के लिये विवश हो जाता हूँ। सच तो यह है कि कविता लिखता नहीं बल्कि मेरी मनोदशा मुझे कविता लिखने के लिये विवश कर देती है।

बरेली के काव्य सम्मेलनों में मैं अक्सर जाता रहा हूँ। आपने मुझे तन्मयता से सुना इसीलिये आपको विशेष काव्य सुख प्राप्त हो सका। वैसे बरेली मेरे लिये इसलिये तीर्थ है कि अपनी जीवनसंगिनी तेजी का प्रथम साक्षात्कार बरेली में ही हुआ था जहाँ मैंने उन्हें अपना यह गीत सुनाया था -

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी क्या करूँ

शुभेच्छु

बच्चन

इस संकलन का एक और पत्र दृष्टव्य है जिसमें उन्होंने सुमित्रा नन्दन पंत को पत्र लिख कर उनके प्रति अपने सौन्दर्य-बोध का इजहार किया था। -

साईं दा !

मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है जब कटरा इलाहाबाद की पीले शिवाले की गली में, अपने मामा जी के घर के सामने मैंने आपको पहली-पहल आते देखा था। मैं स्तब्ध होकर आपको देखता ही रह गया था। क्या मनुष्य इतना सुन्दर भी हो सकता है ! और जातीवार अपने

पथ में मुझे भौचक्का देख, आप सहज साहनुभूति एवं विनोद की एक हल्की सी चपत मेरे गाल पर लगा कर निकल गये थे। तब आप १६ के थे मैं १२ का।

और आज आप ६०वें में हैं और में ५३वें में।

और मैं आज भी स्तब्ध हूँ।

आज मेरी स्तब्धता के विषय हैं - आपका कवित्त्व, आपका व्यक्तित्व।

क्या कवित्त्व इतना दिव्य हो सकता है !

क्या कवित्य इनता भव्य हो सकता है !

अन्तर केवल इतना है। अपनी स्तब्धता में आज मैं कुछ अटपट बोल भी रहा हूं। आप साठा होकर पाठा होंगे तो अपने ५३वें में कुछ लड़कपन करने का अधिकार मुझे स्वाभाविक ही मिल जाता है। इसीलिये आपकी ६०वीं वर्षगांठ पर मैं अपने इन शब्दों से आपना अभिनन्दन करने का साहस कर रहा हूँ, और दुस्साहस भी; क्योंकि इनमें मैंने अपनी 'चपत' को भी सम्मिलित कर लिया है, यानि आपके पत्रों को।

१३ विलिंगटन क्रिसेण्ट

नयी दिल्ली - ११ बच्चन

(स) बच्चन के विशिष्ट पत्र (सम्पादक - डा० चन्द्र देव सिंह)

इस संकलन में बच्चन कालीन साहित्यिक सामाजिक तथा राजनीतिक हस्तियों को लिखे गये बच्चन के पत्र प्रकाशित है। उदाहारणार्थ -

समादरणीय पण्डित जी,

सादर प्रणाम !

आपको स्मरण होगा कि जब आपकी विशेष कृपा से वृत्ति प्राप्त कर मैं शोध कार्य के लिये कैम्ब्रिज में था तो आपकी कैम्ब्रिज यात्रा के दौरान आपका दर्शन लाभ हुआ था। आपकी दृष्टि में मेरे प्रति एक उपेक्षा का भाव मेरे लिये असहनीय हो उठा था। बाद में तेजी जी के द्वारा पता चला कि मेरे 'शुभ चिन्तकों' ने मेरे विरूद्ध आपके कान भरे थे और यह कहा था कि मैंने अपनी पत्नी तेजी का परित्याग करके किसी अंग्रेजी मेम से सांठ-गांठ कर ली है। अब सब कुछ स्पष्ट हो चुका है। आशा है कि किसी दिन मेरी कुटिया में पधार कर अनुग्रहीत करेंगे।

भवदीय

बच्चन

१३ विलिंगटन क्रिसेण्ट

नयी दिल्ली - ११

२३-८-६१

बच्चन की लोकप्रियता इस कदर बढ़ गई थी कि देश के कोने - कोने से उनके प्रशंको के पत्र आते रहते थे। पोस्ट मैन उन तक पत्र पहुँचाने में हलाकान रहने लगे। बच्चन के व्यक्तित्व और कृतित्त्व से प्रभावित कुछ पत्र तो आरसामान्य मनो विज्ञान कोटि में आते है। पीलीभीत से उनकी प्रौढ़ावस्था में दिल्ली में आया एक पत्र श्रीमती तेजी बच्चन के हाथ लगा। इस पत्र के माध्यम से किसी कल्पित नाम की तरुणी ने अपने जन्म जन्मांतर की प्रीति बच्चन के प्रति निवेदित की थी। इस पत्र को पढ़ कर श्रीमती तेजी बच्चन हक्की-बक्की रह गईं और अपने प्रौढ़ पति को सावधान किया कि वह तरुणियों से भावनात्मक खिलवाड़ बन्द करें। बड़े प्रयास के बाद बच्चन तेजी को समझा सके कि इन तरुणियों को वह जानते तक नहीं। उनकी आत्मकथा को पढ़ कर ऐसे पत्र कभी चम्पा के नाम से और कभी श्यामा के नाम से आते ही रहते हैं। इसमें मैं कितना बेकसूर हूँ, मैडम आप स्वयं समझ लें तब से बच्चन की डाक सम्भालने का काम श्रीमती तेजी बच्चन ने अपने जिम्मे कर लिया। यह पत्र इस प्रकार है -

पीलीभीत

१६-१-५५

मेरे जन्म जन्मांतर के जीवनसाथी 'सफरिंग',

मेरा बहुत-बहुत प्यार दुलार !

तुम्हारी 'ज्वाय' को तुमसे बिछड़े जमाना गुजर गया। मुझे अब भी याद है कि मेरी मृत्यु शय्या पर मेरे हाथ पर हाथ रख कर आप इसलिये सोते थे कि कहीं यमराज का कोई दूत मुझे तुम्हारे हाथों से छुड़ा न ले जाय। तुमने यमदूत के अन्तिम द्वार तक यमराज के सैनिकों से युद्ध किया, किन्तु अन्त में मुझे तुमसे जुदा होना ही पड़ा। मुझे ईश्वर की कृपा से विशेष स्मरण शक्ति प्राप्त है। मैं पिछले कई जन्मों से तुम्हारी जीवनसंगिनी रह चुकी हूँ और इस जन्म में मैं पुनः तुम्हारे चरणों में दासी के रूप में स्थान पाना चाहती हूँ। आशा है कि तुम आपनी प्यारी 'ज्वाय' को भूले न होगे। मैं किसी भी दिन तुम्हारे दर पर हाजिर हो सकती हूँ, चाहे पुचकारी जाऊँ और चाहे दुतकारी जाऊँ।

आपकी चिर जीवनसंगिनी

श्यामा (ज्वाय)

(iv) डायरी - प्रवास की डायरी

बच्चन के प्रतिदिन के कार्यक्रमों में डायरी लेखन भी शामिल था। वह महत्त्वपूर्ण घटनाओं को डायरी में लिख लेते थे। इस डायरी के आधार पर उनके जीवन की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटनाएं अनावरित हो सकी। बच्चन स्वयं भी इस डायरी का अपनी सृजनधर्मिता में उपयोग करते थे। बहुधा उनका यथार्थपरक ईमानदार लेखन इस डायरी में अंकित सत्यों के आधार पर ही सम्भव हो सका था। वह डायरी लिखने में कितने लगनशील थे इसका उदाहरण पैरिस यात्रा के समय डायरी में लिखी इन पंक्तियों से होता है - ‘‘पैरिस से हम १२ बजे रवाना हुए। ऊपर से पैरिस कितना घना कायदे से बसा कितना सुन्दर लग रहा था। घण्टे भर के बाद इग्लैण्ड के ऊपर आ गये। इग्लैण्ड में बादल छाये हुए थे और हमारा जहाज बड़ी देर तक बादलों के ऊपर उड़ता रहा।

इस प्रकार हम देखते है कि बच्चन ने अपने जीवन से सम्बन्धित विविध घटनाओं को डायरी में अंकित करके हिन्दी जगत को डायरी साहित्य का भी योगदान दिया।

(v) कहानियां – प्रारम्भिक रचनाएं तीसरा भाग

बच्चन का प्रारम्भिक रचनाधर्मिता काल हिन्दी अन्य विधाओं के अतिरिक्त कहानी विधा में भी हाथ पैर मार रहा था। सन् १६२६ से १६३३ के बीच उन्होंने जो कहानियां लिखीं वह बच्चन की प्रारम्भिक रचनाओं के तीसरे भाग से संकलित करके प्रकाशित हुईं। इस संग्रह की 'माता और मातृ भूमि' पहली कहानी है। इसके अतिरिक्त संकोच त्याग, आंचल का बन्दी, चिड़ियों की जान जाय लड़को का खिलौना, धर्म परीक्षा, खिलौने वाला, दुःखनी, ठाकुर जी, उऋण तथा चुन्नी-मुन्नी इस संग्रह की संकलित कहानियां हैं। कदाचित बच्चन कहानी विधा में अपनी सफलता से सन्तुष्ट नहीं थे। यह तथ्य उनके इस पत्र से उद्घाटित होता है -

''भाई यादवेन्द्र,

तुमने जो मुझे ठोक-पीट कर कहानीकार बनाने का प्रयत्न किया था। उसमें तुम किस प्रकार असफलन रहे, इसके सबूत में मैं तुम्हे यह कहानियां समर्पित करता हूँ।

सस्नेह तुम्हारा

बच्चन

(vi) समीक्षा में – 'कवियों में सौम्य सन्त'

यद्यपि बच्चन एक कवि के रूप में प्रख्यात है, किन्तु उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा पर कलम चलायी है। सुमित्रा नन्दन पंत से उनकी विशेष निकटता थी। पंत जी की रचनाओं पर उन्होंने समीक्षायें लिखीं, जो समीक्षा सहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। पंत विरचित वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन, ज्योत्स्ना, युगान्त, चिदम्बरा, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि तथा उत्तरा कृतियों की समीक्षा बच्चन को श्रेष्ठ तथा सुधी समीक्षक सिद्ध करती हैं।

अध्याय - ४

बच्चन के काव्यात्मक कृतित्त्व में सौंदर्यानुभूति

'बच्चन' ने अपनी काव्यात्मक कृतियों में जीवन से प्राप्त होने वाले अनुभवों के आधार पर अतिसंवेदनशील प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया है कि उनकी समस्त कृतियों में सौंदर्यानुभूति परिलक्षित होती है और उनकी रचना सशक्त रूप लेकर पाठकों के सामने आती है। जैसा कि पिछले अध्याय मे हम उनकी कृतियों का परिचय प्राप्त कर चुके है अतः अब विस्तार से सौंदर्यानुभूति को उनके काव्य में देखेंगे -

(१) तेरा हार

'तेरा हार' बच्चन की काव्यात्मक प्रतिभा का प्रथम प्रयास है। इस कृति मे कवि मन प्रियतमा की सुदर्शना ग्रीवा में कुसमों के हार को सुशोभित देख कर प्रफुल्लित हो उठता है। कुसुमहार प्रिया की ग्रीवा तक पहुँचने के लिये स्वयं से सम्बन्धित जिन उपादानों से विछुड़ता है उनकी सामान्य चर्चा मे कवि की सौंदर्यदर्शी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं -

प्रियतम मैंने बनने को तेरी सुन्दर ग्रीवा का हार
ललित बहन सी कलियां छोड़ी भाई से पल्लव सुकुमार
साथ खेलते फूल, खेलती साथ तितलियां विविध प्रकार।[1]

कवि की प्रिया के सामीप्य की कामना यद्यपि अत्यधिक प्रगाढ़ है, किन्तु वह आवाज़ देकर उसे पुकार कर प्रीति की गोपनीयता को भंग करना नहीं चाहता। कवि को विश्वास है कि उसकी प्रीति की सघनता कलियों की मादक सुगन्ध बनकर प्रियतमा को उसके पास खींच लायेगी। 'सम्बोधन' शीर्षक गीत मे यद्यपि निसर्ग-प्रसरित सौंदर्य का चित्रण हुआ है किन्तु प्रिया के मिलन के लिये समर्पित कवि की साध एक अनुपम भाव सौंदर्य की सृष्टि करती है -

''बुलाऊँ क्यों मैं तुम्हें पुकार
जान ले क्यों सारा संसार ?
तुम्हें इन कलियों का मधुमास
खींच लायेगा मेरे पास।
खिले कलियों सा मन सुकुमार
हमारा तुम्हे निहार-निहार।''[2]

अन्यत्र भी भाव सौंदर्य दृष्टव्य है जब प्रेयसी प्रिय के समक्ष पहुँचती है तो लज्जावश उपहार में देने के लिये लायी कुसुमहार वह छिपा लेती है, किन्तु क्या यह हार और उसके मुख मण्डल पर अभ्युदित लज्जा मिश्रित प्रीति भंगिमा अदृश्य रह सकती थी -

''घर से यह सोच उठी थी
उपहार उन्हें मैं दूँगी
x..x..x..x..x..x..x..x

---

१ 'तेरा हार' - 'कृति' से उद्धृत
२ 'तेरा हार' - 'कृति' से उद्धृत

पर जब उनकी वह प्रतिमा

नयनों से देखी जाकर

तब छिपा लिया आँचल में

उपहार हार सकुचाकर

x..x..x..x..x..x..x..x

वह हार छुपाया मेरा

रहता कब तक अंजाना''[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चन की प्रारम्भिक कृत्तियों से ही उनका सौंदर्य के प्रति आग्रह दिखाई पड़ता है जो उत्तरोत्तर परिवर्तित, परिमार्जित और परिपुष्ट होता हुआ विकास के उच्च शिखरों को छूने में समर्थ हुआ है।

---

१ तेरा हार – 'कृति' से उद्धृत

(२) 'मधुशाला'

बच्चन द्वारा रचित 'मधुशाला' उमर खैय्याम की रुबाइयों से प्रभावित है। कवि ने विश्व के विविध उपादानों के मोहक चित्र खींचे हैं। सम्पूर्ण विश्व को अपने अस्तित्व में समेटे 'मधुशाला' अपनी मादकता में सौंदर्यानुभूति को समेटे हुए है। यद्यपि मधुशाला, मधुबाला, हाला, साकी इत्यादि प्रतीक सृष्टि के गहनतम रहस्यों के उद्‌घाटन में सहायक हैं, तथापि यही प्रतीक सौंदर्य-बोध की भी अभिव्यक्ति करते हैं -

"तारक मणियों से सज्जित नभ, बन जाये मधु का प्याला,
सीधा करके भर दी जाये, उसमें सागर-जल हाला,
मत्त समीरण साकी बनकर, अधरों पर छलका जाये,
फैले हो जो सागर तट से, विश्व बने ये मधुशाला।"[१]

वैश्विक रहस्य के अनावरण में लीन कवि की चेतना प्राकृतिक सौंदर्य को अनदेखा नहीं कर पाती। यद्यपि जैसा कहा गया है कि हाला, बाला, मधुशाला आदि प्रतीक सम्पूर्ण विश्व को समाविष्ट किये हुए हैं और कवि दार्शनिक विस्तार की प्रक्रिया में पर्त दर पर्त अनन्त रहस्यों के अन्तरिक्षों में उड़ाने भरता है, तथापि न तो वह सहज भावुकता से विलग होता है और न सौंदर्यानुभूति से। प्रत्यूष वेला का नैसर्गिक सौंदर्य दृष्टव्य है जैसे- प्रातः काल साकी है, उषा मधुबाला है, सितारों रूपी मणियों से खचित अन्तरिक्ष चादर है, जिस पर मधुबाला उषा अपने हाला का मूल्य वसूल करती है। अनन्त किरणावलियों के माध्यम से इस हाला का पान करने वाले पक्षी मधुमत्त होकर प्रतिदिन प्रातः कालीन मधुशाला को मुखरित करते हैं -

'साकी बन आती है प्रातः जब अरुणा उषा बाला,
तारक-मणि-मण्डित चादर दे मोल धरा लेती हाला,
अगणित कर-किरणों से जिसको पी खग पागल हो जाते,
प्रति प्रभात से पूर्ण प्रकृति में मुखरित होती मधुशाला।[२]

इसी प्रकार रात्रि के सौंदर्य को कवि ने ऐसे ही प्रतीकात्मकता के माध्यम से व्यक्त किया है। इसमें अंधेरा मधु विक्रेता है, शशिबाला सुन्दर साकी है, जो अभी प्रत्येक किरण से चाँदनी का मादक जाम छलकाती है। इस प्रकार आकाश में टिमटिमाते नक्षत्र नशें में डूब कर झपकियां लेने लगते हैं -

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-४६ 'मधुशाला'
२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-५० 'मधुशाला'

अंधकार है मधु-विक्रेता, सुन्दर साकी शशिबाला,
किरण-किरण में जो छलकाती जाम जुन्हाई का आला,
पीकर जिसको चेतनता खो, लेने लगते हैं झपकी,
तारक दल-से पीने वाले; रात नहीं है मधुशाला।[1]

कवि का सौंदर्यबोध प्रातः अथवा रात्रि तक सीमित नहीं रहता वह प्रायः अपने प्रत्येक प्रस्तुतीकरण में अनजाने ही सौंदर्यानुभूति की अस्मिता को स्वीकृति दे देता है। कभी हरी भरी अंगूर की लताओं से खिंची हाला चली आती है, कभी रक्त कमलों की कोमल कलिकाऐं प्याली व पुष्प-चषक बनते हैं, कभी ललित तरंगे साकी बनकर माणिक वर्णीय मधु से आपूरित हो जाती है। इस प्रकार की मानसरोवर रूपी मधुशाला में मधुपान करके हंस मतवाले हो जाते हैं -

घन श्यामल अंगूर लता से खिंच-खिंच यह आती हाला,
अरुण कमल-कोमल-कलियों की प्याली, फूलों का प्याला,
लोल हिलोरें साकी बन-बन माणिक मधु से भरजाती,
हंस मत्त होते पी-पीकर मानसरोवर मधुशाला।[2]

'मधुशाला' का कवि सारे विश्व को मधुशालामय में देखता है। विविध प्रकार से उसका वर्णन करता है। अपनी रचनाधर्मिता के अभीष्ट तक पहुँचने के लिये, अपने अभिप्रेत को सिद्ध करने के लिये उसकी निगाहें सर्वत्र दौड़ती हैं और इस प्रक्रिया का परिणाम हिन्दी में एक अभूतपूर्व कृति के रूप में होता है, किन्तु अनुसंधित्सु कवि के इस उपक्रम में सौंदर्य की हृदयस्पर्शी छटा का दर्शन कर ही लेती है; जब हिम जल हाला होती है, हिम श्रेणियां अंगूर की लता सी प्रसरित होती हैं, चंचल नदियां साकी बनती हैं, जिनकी मदिरा का पान करके खेत मतवाले होकर लहलहाने लगते हैं तब सम्पूर्ण भारत को पवित्र मधुशाला के रूप में देखकर अनुसंधित्सु कवि की अन्तश्चेतना में समाये सौंदर्यबोध का साक्षात्कार करती हुई सौंदर्यानुभूति से विभोर हो उठती है -

हिम श्रेणी अंगूर लता-सी फैली, हिम जल है हाला,
"चंचल नदियां साकी बनकर, भरकर लहरों का प्याला
कोमल कूल करों में अपने, छलकाती निश दिन चलती,
पीकर खेत खड़े लहराते, भारत पावन मधुशाला।"[3]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-५० 'मधुशाला'
२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-५१ 'मधुशाला'
३ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-५१ 'मधुशाला'

(३) मधुबाला

उमर खैय्याम के दर्शन और प्रतीकों से प्रभावित बच्चन की यह रचना उनके काल्पनिक सृष्टि की झांकी प्रस्तुत करती है, किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है कि प्रत्येक कृति में कृतिक की आत्माभिव्यक्ति अवगुण्ठित है - 'मधुबाला' में सौंदर्य प्रेमी बच्चन का सौंदर्यबोध यत्र-तत्र अपनी छटा दिखा ही देता है।

मधुबाला का प्रारम्भ मधुबाले ! शीर्षक गीत से हुआ है। इस गीत में शब्दों का सौंदर्य, लय का सौंदर्य, भावानुकूल गीत के चयन का सौंदर्य तो है ही, 'मधुबाला' के परिप्रेक्ष्य में कवि कथन सौंदर्यानुभूति से कितना सरस है-यह विशेष दर्शनीय है -

मधुवर्षिणि,
मधु बरसाती चल
बरसाती चल,
बरसाती चल।
झंकृत हो मेरे कानों में,
चंचल, तेरे कर के कंकण,
कटि की किंकिणि
पग के पायल --
कंचन पायल
छन, छन पायल।
मधुवर्षिणि,
मधु बरसाती चल
बरसाती चल, [१]

मधुबाला स्वतः अपना परिचय देते हुए कवि हृदय में निवास कर रहे सौंदर्य को साकार करती है -

मधुघट ले जब करती नर्तन,
मेरे नूपुर के छूम - छनन
में लय होता जग का क्रन्दन,
झूमा करता मानव जीवन

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-८० 'मधुबाला' - 'मधुबाले' शीर्षक से

का क्षण-क्षण बनकर मतवाला।

मैं मधुशाला की मधुबाला !

मैं इस आंगन की आकर्षण,

मधु से सिंचित मेरी चितवन,

मेरी वाणी में मधु के कण,

मधुमत्त बनाया मैं करती,

यश लूटा करती मधुशाला।

मैं मधुशाला की मधुबाला ! [१]

उपर्युक्त पंक्तियां सौंदर्य की पीयूष धारा से स्नात एवं कवि की सौन्दर्याग्रही चेतना से कितनी मदिर और चित्ताकर्षक है - सहज बोधगम्य है। 'मालिक-मधुशाला' गीत के अन्तर्गत सौंदर्यानुभूति के पराग कण अपनी सुगन्धि इस तरह विकीर्ण कर रहे हैं -

इनके मदिराभ अधर देखो,

मृदु कर, कमनीय कमर देखो,

कटि-किंकिण पद-घूँघर देखो,

मैं मन को हरने वाला हूँ।

मैं ही मालिक - मधुशाला हूँ ! [२]

'हाला' शीर्षक के अन्तर्गत हाला की आत्माभिव्यक्ति अपने अस्तित्व के प्रति अति अभिमानी है। यथा उसका सुरभित शरीर जब सांसें लेता है तो संसार के पतझड़ में मतबाला बसन्त समीरण प्रवाहित होने लगता है। कोयल के अस्तित्व को अनुप्राणित करके समस्त अन्तरिक्ष को निःस्वनित कर देता है और उसी प्रभाव से विकसित कमलों की श्रंखलाओं से मद विभोर भौरों के झुण्ड नर्तन करने लगते हैं -

अवतीर्ण रूप में भी तो है मेरा इतना सुरभित शरीर,

दो श्वांस बहा देता मेरी जग-पतझड़ में मधुऋतु समीर,

जो पिक-प्राणों मे कर प्रवेश तनता नभ में स्वर का वितान,

लाता कमलों की महफ़िल में नर्तन करने को भ्रमर भीड़;

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-८१ 'मधुबाला' - 'मधुबाला' शीर्षक से

२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-८५ 'मधुबाला' - 'मालिक-मधुशाला' शीर्षक से

मधुबाला के पग - पायल क्या पायेंगे मेरे मन पर जय।

उल्लास-चपल, उन्माद-तरल, प्रति पल पागल-मेरा परिचय ![1]

'पाटलमाल' शीर्षक के अन्तर्गत गुलाब के सुगन्धित पुष्प अपने प्रफ्फुल यौवन के सौंदर्य का ऐसा परिवेश सृजित करते हैं कि मलय समीरण मादकता में मचलता हुआ उपवन में प्रवाहित हो उठता है। कांटेदार पुष्प वृन्त और लचकीली डालें हरित पत्रावलियों के अधरों से अट्टहास करने लगती हैं। उसका बचपन समाप्त हो जाता है और गुलाब की कलियों के रूप में उभार लेते अनन्त उरोज नव यौवन के शुभारम्भ का संवाद प्रसरित करने लगते हैं, ताकि मरन्द पायी मधुकरों के समूह समागम के लिये उपस्थित हो सकें -

मधुप दल का करती आह्वान रही खिल वन में पाटल माल !

वही वन के उपवन के बीच मचलती मादक मलय बयार,

हरितपल्लव अधरों को खोल हँसी ये डालें कांटेदार;

सरल यह बालपने का हास न रहने पाया था कुछ रोज,

कि ले नवयौवन का संवाद कली-से उभरे अमित उरोज ;

भले जगती अपना उन्माद छिपा रखे ढक मूँद सँभाल,

मधुप दल का करती आह्वान रही खिल वन में पाटल माल ![2]

मधुबाला के मेंहदी से रचे अरुणाभ पाँव सौंदर्य प्रेमियों के कितने चिर परिचित होते हैं, उसकी सूचना तथा सौंदर्यानुभूति की तीव्रता 'पगध्वनि' शीर्षक के अन्तर्गत दर्शनीय है -

पहचानी यह पगध्वनि मेरी,

वह पगध्वनि मेरी पहचानी !

नन्दन वन में उगने वाली

मेंहदी जिन तलवो की लाली

बनकर भू पर आयी आली;

मैं उन तलवों से चिर परिचित,

मैं उन तलवों से चिर ज्ञानी !

वह पगध्वनि मेरी पहचानी ![3]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-६८ 'मधुबाला' - 'हाला' शीर्षक से उद्धृत

२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१०४ 'मधुबाला' - 'पाटलमाल' शीर्षक से उद्धृत

३ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१०६ 'मधुबाला' - 'पगध्वनि' शीर्षक से उद्धृत

'मधुबाला' के अन्तर्गत बच्चन का प्रख्यात गीत जिसने किसी युग में कवि सम्मेलनो में धूम मचा दी थी 'इस पार उस पार' यथार्थ के धरातल पर प्रत्यक्ष विश्व की स्वीकृति का संदेश देते हुए तथा धरती से इतर किसी कल्पित स्वर्ग आदि कमनीय लोकों को नकारते हुए यद्यपि विविध तर्कों के माध्यम से प्रत्यक्ष की पूजनीयता का सन्देश देता है तथापि इस गीत में सौंदर्यानुभूति की सुगन्धि भी रची बसी है। कवि का इस पार से आशय इसी धरती से तथा 'उसपार' से आशय स्वर्ग से है। स्वर्ग कितना भी सुखमय तथा भोग सामग्रियों से भरा पूरा हो, किन्तु कवि उस तथाकथित कल्पित स्वर्ग की तुलना में प्रत्यक्ष जगत के विभिन्न प्रिय उपादानों में अपनी रमणीयता, सुखानुभूति तथा सन्तुष्टि के सन्दर्भ तलाश लेता है। उस पार उसकी प्रेयसी जिसे 'तुम' कह कर सम्बोधित किया गया है-अघोषित सौंदर्य से अवेष्टित प्रतिभाषित होती है। पाठक अपनी कल्पना के द्वारा 'तुम' में यथाशक्य तथा यथासम्भव सौंदर्य की अनुभूति करता है। वस्तुतः 'तुम' को सौंदर्यवाचक शब्दों से चित्रांकित करके कवि ने पाठकों के लिये सौंदर्यानुभूति की प्रचुर सम्भावनायें छोड़ दी हैं। यह सौंदर्यबोध का अति रूचिकर प्रयोग है। इस गीत ने अन्यत्र भी जागतिक सौंदर्य के शाब्दिक आधार भी दिये हैं -

जग में रस की नदियां बहती, रसना दो बूंदें पाती है,
जीवन की झिलमिल-सी झांकी, नयनों के आगे आती है,
स्वर-तालमयी वीणा बजती, मिलती है बस झंकार मुझे,
मेरे सुमनों की गंध कही यह वायु उड़ा ले जाती है;
ऐसा सुनता, उस पार, प्रिये, ये साधन भी छिन जायेंगे,
तब मानव की चेतनता का आधार न जाने क्या होगा !
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा ![1]

इस प्रकार हम देखते है कि मधुबाला में बच्चन की सौंदर्यानुभूति प्रायः सर्वत्र ललित एवं चित्ताकर्षक दृष्टिगोचर होती है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१०६ 'मधुबाला' - 'इस पार-उस पार' शीर्षक से उद्धृत

कवि के मन में घोर वेदना है। वह अपने दर्द को भरपूर जीना चाहता है। उससे निकलने का कोई प्रयास उसके अन्तर्मन में नहीं है -

अब निशा नभ से उतरती !

था उजाला जब गगन में,

था अंधेरा ही नयन में,

रात आती है हृदय में भी तिमिर-अवसाद भरती !

अब निशाा नभ से उतरती ! [1]

सब ओर उजियाला है, दीवाली की रात है, किन्तु कवि के मन में अंधेरा है। यदि कहा जाय कि कल भी मन अकेला था आज भी अकेला है - तो अत्युक्ति न होगी। अपनी मनः स्थिति का चित्रण कवि ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में किया है -

साथी घर-घर आज दिवाली !

फैल गई दीपों की माला,

मंदिर-मंदिर में उजियाला,

किन्तु हमारे घर का, देखो, दर काला, दीवारें काली।

साथी घर घर आज दिवाली !

हास उमंग, हृदय में भर-भर,

घूम रहा गृह-गृह, पथ-पथ पर,

किन्तु हमारे घर के अन्दर, डरा हुआ सूनापन खाली !

साथी घर घर आज दिवाली ! [2]

कवि अतीत की स्मृतियों में खो जाता है। वे स्मृतियां उसको गुदगुदाती हैं। जो जीवन उसने अपने साथी के साथ जिया था, वही स्मृतियां कवि के हृदय से कविता के रूप में स्फुटित होती हैं और पाठक के समक्ष सौंदर्यमयी छटा विखेरती है -

यह पावस की सांझ रँगीली !

इन्द्रधनुष की आभा सुन्दर

साथ खड़े थे इसी जगह पर

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१६४ 'निशा निमन्त्रण' - पद सं०-६

२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१७१ 'निशा निमन्त्रण' - पद सं०-२७

थी देखी उसने औ' मैंने - सोच इसे अब आँखें गीली !

यह पावस की सांझ रँगीली ! [1]

कवि की वेदना में भी असीम सुख की अनुभूति हो रही है और जहाँ सुख की अनुभूति होती है वहां सौंदर्य आप ही विद्यमान रहता है, जैसाकि कवि की उक्त पंक्तियों मे देखने को मिलता है। धीरे धीरे कवि का चिन्तन बदलता है और कवि अवसाद के क्षणों से निकल कर आशा के सबेरे में पहुँच जाता है। विरह में भी उसका जीवन संगीत छेड़ने लगता है -

कोई पार नदी के गाता !

भंग निशा की नीरवता कर,

इस देहाती गाने का स्वर,

ककड़ी के खेतों से उठकर, आता जमुना पर लहराता !

कोई पार नदी के गाता !

x..x..x..x..x..x..x..x

आज न जाने क्यों होता मन,

सुनकर यह एकाकी गायन,

सदा इसे मैं सुनता रहता, सदा इसे मैं गाता जाता !

कोई पार नदी के गाता ! [2]

कवि अपनी कल्पना में एक साथी को बसाकर जीने की कामना करता है। कवि ने अपने को कल्पित साथी के प्रति समर्पित करते हुए कहा है -

साथी, सो न, कर कुछ बात !

बोलते उड्गण परस्पर,

तरु - दलों में मन्द 'मरमर',

बात करती सरि-लहरियां कूल से जल-स्नात !

साथी, सो न, कर कुछ बात !

बात करते सो गया तू,

स्वप्न में फिर खो गया तू,

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१६६ 'निशा निमन्त्रण' - पद सं०-१३
२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१७० 'निशा निमन्त्रण' - पद सं०-२५

रह गया मैं और आधी बात, आधी रात !

साथी, सो न, कर कुछ बात !

पूर्ण कर दे वह कहानी,

जो शुरू की थी सुनानी,

आदि जिसका हर निशा में, अन्त चिर - अज्ञात !

साथी, सो न, कर कुछ बात ![1]

समय और परियोजना के साथ-साथ कवि का चिन्तन कभी आशामय और कभी निराशामय हो जाता है। वह जब आशा की बात करता है तो उसे अपने जीवन को जीने की इच्छा प्रकट होती है और कभी वह निराश होता है तो अतीत की गहराइयों से निकलने का कोई प्रयास नहीं करना चाहता। इसी प्रकार का चिन्तन निशानिमन्त्रण में पग-पग पर देखा जा सकता है। जिस प्रकार लहरें समुद्र में आती-जाती हैं, उसी प्रकार कवि का मन उम्मीद व अवसाद के घेरे में बँधा है - एक स्थान पर कवि कहता है।-

यह पावस की साँझ रंगीली[2]

तो दूसरी ओर कहता है -

है पावस की रात अँधेरी[3]

कवि की द्वन्द्वात्मक मनः स्थिति में भी रचित कविता कहीं न कहीं पाठकों को सौंदर्य बोध करा ही देती है। कवि अपने प्रिय के साथ भोगे मधुर क्षणों को याद करते हुए प्रश्न कर उठता है -

क्षण भर को क्यों प्यार किया था ?

अर्द्ध रात्रि में सहसा उठकर,

पलक संपुटों में मदिरा भर,

तुमने क्यों मेरे चरणों में अपना तन-मन वार दिया था ?

क्षण भर को क्यों प्यार किया था ?

यह अधिकार कहाँ से लाया !

और न कुछ मैं कहने पाया -

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१७५ 'निशा निमन्त्रण' - पद सं०-३६

२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१६६ 'निशा निमन्त्रण' - पद सं०-१३

३ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१७७ 'निशा निमन्त्रण' - पद सं०-४१

मेरे अधरों पर निज अधरों का तुमने रख भार दिया था !

क्षण भर को क्यों प्यार किया था ?[1]

कवि जीवन के प्रति पूर्ण आशान्वित है। वह पिछले जीवन को भुलाकर नव जीवन जीना चाहता है। वह एक नीड़ बनाना चाहता है और इसी आशा को मन में सँजोये कवि कहता है-

आ रही रवि की सवारी !

नव-किरण का रथ सजा है,

कलि-कुसुम से पथ सजा है,

बादलों - से अनुचरों ने स्वर्ण की पोशाक धारी !

आ रही रवि की सवारी !

विहग बन्दी और चारण,

गा रहे हैं कीर्ति-गायन,

छोड़कर मैदान भागी तारकों की फौज सारी !

आ रही रवि की सवारी ![2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'निशा निमन्त्रण' प्रारम्भ में अवसाद, मध्य में द्वन्द्वात्मक स्थिति और अन्त में जीवन के प्रति पूर्ण आशान्वित विचारों से ओत-प्रोत काव्य है, जो आदि से अन्त तक सौंदर्यबोध से परिपूर्ण है। इस काव्य के अन्त तक आते-आते कवि कह उठता है -

विश्व को उपहार मेरा !

पा जिन्हे धनपति, अकिंचन,

खो जिन्हें सम्राट, निर्धन,

भावनाओं से भरा है आज भी भण्डार मेरा !

विश्व को उपहार मेरा !

x..x..x..x..x..x..x..x

ले तृषित मरु, होठ तेरे,

लोचनों का नीर मेरे !

मिल न पाया प्यार जिनको आज उनको प्यार मेरा !

विश्व को उपहार मेरा ![3]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१८४ 'निशा निमन्त्रण'

२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-१६१ 'निशा निमन्त्रण'

३ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-२०० 'निशा निमन्त्रण'

(५) एकान्त संगीत

'एकान्त संगीत' 'निशा निमन्त्रण' के साथ ही लिखी गई कृति है। कवि की वेदना इसमें और भी अधिक घनीभूत हुई है। यद्यपि कवि ने आदि से अन्त तक अकेलेपन को व्यक्त किया है फिर भी यत्र-तत्र सौंदर्य के दर्शन हो ही जाते हैं। कल्पनाओं में डूबा कवि एकान्त में विश्राम करना चाहता है, जहाँ कोई उसको लोरी सुना कर सुलाये। वह अपनी इस इच्छा को इस प्रकार प्रकट करता है -

कोई गाता, मैं सो जाता !
संसृति के विस्तृत सागर पर
सपनों की नौका के अन्दर
सुख दुख की लहरों पर उठ-गिर बहता जाता मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता !
आँखों मे भरकर प्यार अमर,
आशीष हथेली में भरकर
कोई मेरा सिर गोदी में रख सहलाता, मैं सो जाता !
कोई गाता, मैं सो जाता ![१]

कवि ने बड़ी सुन्दरता से अपने भावों को व्यक्त किया है। वह दुनिया से दूर अकेले अर्थात् उसके काल्पनिक प्रिया के अतिरिक्त और कोई न हो रहना चाहता है। कवि का मन स्वयं अपने आप ही अपने को समझाने लगता है। उसे किसी की आवश्यकता नहीं। उसके जीवन में उथल-पुथल है, मन अशान्त है ऐसे में वह क्या करे -

त्राहि-त्राहि कर उठा जीवन !
जब रजनी के सूने क्षण में
तन मन के एकाकी मन में,
कवि अपनी विह्वल वाणी से अपना व्याकुल मन बहलाता;
त्राहि-त्राहि कर उठता जीवन !
जब उर की पीड़ा से रोकर,

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-२१६ 'एकान्त संगीत'

फिर कुछ सोच -समझ चुप होकर,

विरही अपने ही हाथों से अपने आंसू पोंछ हटाता;

त्राहि-त्राहि कर उठता जीवन !

पंथी चलते - चलते थककर,

बैठ किसी पथ के पत्थर पर,

जब अपने ही थकित करों से अपना विथकित पांव दबाता;

त्राहि-त्राहि कर उठता जीवन ![1]

कवि के एकाकी जीवन में भी जिजीविषा के प्रति आत्म विश्वास है। यद्यपि उसका मन दग्ध है, वह दीन है, दुखी है, फिर भी हौंसला है जीने का ! अपने विचारों को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है -

अग्नि देश से आता हूँ मै !

झुलस गया तन, झुलस गया मन,

झुलस गया कवि-कोमल जीवन,

किन्तु अग्नि वीणा पर अपने दग्ध कण्ठ से गाता हूँ मैं;

अग्नि देश से आता हूँ मैं !

स्वर्ण शुद्ध कर लाया जग में,

उसे लुटाता आया मग में,

दीनों का मैं वेश किये, पर दीन नहीं हूँ दाता हूँ मैं;

अग्नि देश से आता हूँ मैं !

तुमने अपने कर फैलाये,

लेकिन देर बड़ी कर आये,

कंचन तो लुट चुका पथिक, अब लूटो राख लुटाता हूँ मैं;

अग्नि देश से आता हूँ मै ![2]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-२३६ 'एकान्त संगीत'

२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-२४८ 'एकान्त संगीत'

कवि का जीवन विष से भरा है। उसने अतीत में जिन सुखद क्षणों को जिया है, वे अब ध्वस्त हो चुके हैं। केवल सुनहरी यादें शेष हैं, जिनको लेकर वह जीवन रूपी विष को पीने की इच्छा रखता है -

विष का स्वाद बताना होगा !
ढाली थी मदिरा की प्याली,
चूसी थी अधरों की लाली,
कालकूट आने वाला अब, देख नहीं घबराना होगा !
विष का स्वाद बताना होगा !
आंखों से यदि अश्रु छनेगा,
कटुतर यह कटु पेय बनेगा,
ऐसे पी सकता है कोई, तुझको हँस पी जाना होगा !
विष का स्वाद बताना होगा !
गरल पान करके तू बैठा,
फेर पुतलियाँ कर पग ऐंठा,
यह कोई कर सकता, मुर्दे, तुझको अब उठ गाना होगा !
विष का स्वाद बताना होगा ![1]

अन्त में कवि ने जीने के उत्साह एवं आत्मविश्वास से भरे स्वरों के साथ एक बार फिर अपने को अकेलेपन में धकेल दिया है -

कितना अकेला आज मैं !
खोया सभी विश्वास है,
भूला सभी उल्लास है,
कुछ खोजती हर सांस है, कितना अकेला आज मैं !
कितना अकेला आज मैं ![2]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-२५२ 'एकान्त संगीत'
२ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं०-२५७ 'एकान्त संगीत'

(६) आकुल अन्तर

कवि की पीड़ा एवं वेदना से मुक्त जीवन का चित्र 'निशा निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' के साथ-साथ 'आकुल अन्तर' में भी उभरा है। संवेदना के गीत इस कृति में भरे पड़े हैं। उनकी पीड़ा एक राग है, जिसे पढ़कर पाठक रागात्मक अनुभूति से सराबोर हो जाता है। भारत का शास्त्रीय चिन्तन भी इसी पक्ष में है -

एको रसः करुण एव [1]

कहकर भवभूति ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया था। अवसाद के प्रति मानवीय आकर्षण बार्ज़िल के इस कथन से भी सिद्ध होता है -

मानवता का सब कुछ आँसुओं से नहाया हुआ है।

There is a sense of tears in thing human. [2]

सम्पूर्ण काव्य में पीड़ा की अभिव्यक्ति है। डा० दिनेश चन्द्र द्विवेदी ने पीड़ा की अभिव्यक्ति को इस प्रकार व्यक्त किया है -

जब प्रतीति का अवश हिमालय,
पीड़ा की निर्झरिणी को,
अनजाने लोकार्पित करता है।
जैसे व्यथा विभोर नयन,
व्याकुल आँसू ढलका देते हैं।
तब वह जन-जन से अभिनन्दित,
पावन गंगा बन जाती है। [३]

सरिता के स्वाभाविक प्रवाह की भांति काव्य का प्रवाह, प्रभावी, रुचिर और आदरणीय होता है। अनुभूति की अतल गहराइयों से उभरे गीत जब निर्व्याज रूप से प्रस्तुत होते हैं, तब वे भाविकों के मर्म को सहज ही छू लेते हैं, किन्तु जब आग्रह पूर्वक और योजनाबद्ध ढंग से उनमें सिद्धान्तों और विचारों की ठूंसा ठूंसी की जाती है, तो वे अनगढ़ और बेसुरे होकर भाविकों के लिये मात्र बोझ बन जाते हैं। कविता के आधार पर जीवन के गढ़ने का उपक्रम वस्तुतः कविता

---

१ 'उत्तर राम चरित' से - भवभूति
२ 'SORROW' से - बार्ज़िल
३ 'अन्तर यात्रा' से उद्‌धृत - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी

के साथ एक अनाचार है। जीवन के विविध आयाम उचित अवसर और परिस्थिति से प्रतिभा सम्पन्न कवि के हृदय से गीत उद्गार बनकर फूट पड़ते हैं। बच्चन के 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' और 'आकुल अन्तर' में इसी प्रकार के गीतों का सहज प्रवाह परिलक्षित होता है। इन कृतियों में मूलतः पीड़ा, हताशा, कुण्ठा तथा विवशता के स्वर है, तथापि कवि का रागात्मक ऐश्वर्य अपनी छाया में सौंदर्यबोध को आश्रय देता रहता है। प्रत्यक्ष सौंदर्यबोध की तुलना में, इन रचनाओं मे ध्वनिश्लेष के माध्यम से सौंदर्यानुभूति का अस्तित्व स्थापित हुआ है, जो अपेक्षाकृत और भी प्रभावी तथा हृदय स्पर्शी है।

व्यथित कवि अपनी अन्तर्परिधि से उबर कर जब प्रकृति पर दृष्टि निक्षेप करता है, तब उसे कभी उदित हो रहे चाँद के माध्यम से उसकी अन्तश्चेतना में निगूढ़ सौंदर्यानुभूति की अभिव्यंजना का अवसर मिल जाता है -

चुपके से चाँद निकलता है
तरु माला होती स्वच्छ प्रथम,
फिर आभा बढ़ती है थम-थम,
फिर सोने का चन्दा नीचे से ऊपर को चलता है
चुपके से चाँद निकलता है।

x..x..x..x..x..x..x..x

अरुणाभा किरणों की माला,
रवि-रथ बारह घोड़ो वाला,
बादल, बिजली औ' इन्द्रधनुष
तारक-दल सुन्दर शशि बाला।[1]

कवि के लिये प्रकृति जीवित है, उसके अस्तित्व में समायी रागात्मक चेतना विभिन्न आधार खोजती हुई सौंदर्यानुभूति का साक्षात्कार करती है -

चाँद सितारे, मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है,
कितनी बार धरा पर प्रेयसि -प्रियतम का अभिसार हुआ है !
चाँद सितारे, मिलकर बोले,[2]

---

१ **बच्चन रचनावली** - भाग-१ - पृ०सं० २८२
२ **बच्चन रचनावली** - भाग-१ - पृ०सं० २८३

बच्चन प्रेम में किसी छद्म आदर्श को स्वीकार नहीं करते। द्वन्द्व की गलियों से गुजरने वाला प्यार एक पक्षीय कैसे हो सकता है ? वह 'प्लैटोनिक लव' (Platonic Love) को नकारते हुए तब तक प्यार को प्यार नहीं मानते जब तक प्रेयसी सशरीर उपस्थित होकर कवि को अपने अधरों का मधुपान न कराये। शरीर प्रेम के लिये संसार को ठुकरा देने की इच्छा लिये बच्चन के इस प्रस्तुतीकरण में प्रकारान्तर से सौंदर्यानुभूति के दर्शन होते है -

तब तक समझूँ कैसे प्यार,
अधरों से जब तक न कराये प्यारी उस मधुरस का पान,
जिसको पीकर मिटे सदा को अपनी कुछ संज्ञा का ज्ञान,
मिटे साथ में कटु संसार
तब तक समझूँ कैसे प्यार।[1]

जागतिक जंजाल के प्रति पराङ्मुख होकर कवि अपने काव्य संसार में आत्मविस्मृत हो जाना चाहता है। वह कमनीय सौंदर्य की प्रतिमूर्ति मधुबाला की गोद में सिर रखकर आप्तकाम होकर मधुबाला के अधरों की लालिमा में जीवन का रसपान करने लगता है। वह मधुबाला के कंगनों के सुहाने स्वरों में धरती के सारे दुख दर्द भूल जाता है -

जो लेट गया मधुबाला की गोदी में सिर धरकर अपना,
हो सत्य गया जिसका सहसा कोई मन का सुन्दर सपना,
दी डुबा जगत की चिन्ताऐं जिसने मदिरा की प्याली में,
जीवन का सारा रस पाया जिसने अधरों की लाली में,

मधुबाला की कंकण-ध्वनि में जा भूला जगती का क्रन्दन,
जो भूला जगती की कटुता उसके आँचल में मूँद नयन,
जिसने अपने सब ओर लिया कल्पित स्वर्गों का लोक बसा,
कर दिया सरस उसको जिसने वाणी से मधु बरसा-बरसा।[2]

कवि जो बहुधा अपनी व्यथा के अंधकार में रहने के लिये अभिशप्त है, वह जब प्रकाश की किरण देखता है, तो उसके अन्तश्तल का सौंदर्यबोध जागकर जीवन की नई आशाओं का दामन थाम लेता है। वह रश्मि के माध्यम से सुन्दर उषा की अरुणिम छवि का रस पान करता है-

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० २८४
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं० २६२

यह एक रश्मि --

पर छिपा हुआ है इसमें ही,

उषा बाला का अरुण रूप,

दिन की सारी आभा अनूप, ?

जिसकी छाया में सजता है

जग राग रंग का नवल साज।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उन कृतियों मे भी जो बच्चन के आंसुओं से भीगी हैं - सौंदर्यानुभूति की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सुगन्ध से सुवासित हैं।

----

१ बच्चन रचनावली भाग -१ -पृ०सं० २९८ पद सं० ६८

(७) सतरंगिनी

'सतरंगिनी' कवि बच्चन के जीवन में अनवरत चल रही कवि यात्रा का परिणाम है। बच्चन की यात्रा-सरिता, चम्पा के मनो जगत से गुजरती दैहिकता में प्रविष्ट होती हुई श्यामा रूपी विस्तृत सागर में प्रवेश करती है। रागात्मक सरोकारों के लिये बेकरार बच्चन की चेतना ने श्यामा में अपनी चिर तृषा की परितृप्ति के संदर्भ खोजने चाहे। कवि की रागात्मकता विविध कोणों से उस सम्पूर्णता में समा जाना चाहती थी, जहां उसके अन्तः कोलाहल को काम्य सन्तुष्टि उपलब्ध हो सके। उमर खैय्याम का प्रभाव भी बच्चन पर पड़ा और कवि का तरुण मन यौवन की उमंगों और दर्शनिक रहस्यों से समायोजित हो 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश' जैसी रचनाऐं सृजित कर सका। मधु की प्रतीकात्मकता गम्भीर अर्थवत्ता से जुड़ी है। यह 'मधु' शब्द मादकता को भी द्योतित करता है, शहद की मधुरता को भी द्योतित करता है और अन्तर्जगत में प्रदीप्त तरुणकाम्य रागात्मकता को भी द्योतित करता है। माधुर्य, मादकता तथा रागात्मकता बच्चन की उद्दाम यौवन की गगन गामिनी उत्फुल्ल उड़ानों को असाधारण रूप से प्रस्तुत कर सकी हैं। श्यामा चिर रुग्णता की शिकार होकर मृत्यु शैय्या पर जा लेटी, किन्तु इस दौरान 'तेरा हार', 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश' की सृष्टि हो चुकी थी। श्यामा का अवसान कल्पना के आकाश में उड़ते कवि को वेदना विभोर धरती के यथार्थ पर खींच लाया। कवि का मर्मस्थल चूर-चूर हो गया था, उसकी सुकुमार और मादक कल्पनाऐं रागात्मक अरुणायियों मे अठखेंलियां करने के बजाय वियोग की ज्वाला में झुलसने के लिये विवश हो गईं। जीवन में अंधकार ही अंधकार परिव्याप्त हो गया। दूर-दूर तक प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखी। मर्माहत कवि की निराशा, हताशा, कुण्ठा और क्षत-विक्षत भावुकता, 'एकान्त संगीत' तथा 'निशा निमन्त्रण' के रूप में फूट पड़ी। दर्द की इन वादियों में भटकता कवि अपनी आहों, कराहों को गीत के रूप में प्रवाहित करता रहा। उन गीतों में सजीव पीड़ा दर्द भरे निस्वन के साथ परिवेश को करुणार्द्र करने मे सक्षम है, लेकिन रात कितनी भी अंधेरी क्यों न हो, वह प्रत्यूष वेला के आगमन को नहीं रोक सकती। जो कवि अगाध पीड़ा में डूबता जीवन और मरण की व्यर्थता का ऐलान कर रहा था, उसकी दृष्टि अंधेरे को चीर कर प्रकाश को तलाशने लगी। इस सम्बन्ध में बच्चन का कथन उनकी मनोदशा को व्यक्त करने में समर्थ है - "जो लोग मेरे 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत','आकुल अन्तर' से परिचित हैं, वे जानते होंगे कि "ये मेरे उस काल की अभिव्यक्तियां हैं, जब मेरे जीवन की दुर्गम परिस्थितियों ने

मुझे पीड़ा, वेदना, निराशा, अवसाद, विषाद, अन्धकार एकाकीपन, जीवन की लक्ष्यहीनता को प्राणों की तरह अपनाने को विवश कर दिया।"[१]

बच्चन के ही शब्दों में-

"एक दिन जो मधुशाला का मालिक था - (मैं ही मालिक मधुशाला हूँ) जिसके संकेतों पर मधुशालाओं की कतारें मदिरा की वर्षा कर देती थीं (मधुवर्षिनि। मधुवरसाती चल!') जिसकी जादुई उंगलियों को छूकर मृत, मूक, जड़, मधु-घट और प्यालों में जीवन लहरानें लगता था (मुझको छूकर मधु-घट छलके, प्याले मधु पीने को ललके।) जिसे सुन्दर साकी और मधुमत्त पीने वाले भुजपाशों में सौन्दर्य समेटे अधरों से मधु पीते न थकते थे और जिसके मधुमत्त कण्ठ के तरानों से जन-जन का अन्तर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रहा था (भर दिया अम्बर अवनि को, मत्तता के गीत गा - गा) वह अब कह रहा है -

अब वे मेरे गान कहाँ हैं !

टूट गई मरकत की प्याली,

लुप्त हुई मदिरा की लाली,

मेरा व्याकुल मन बहलाने वाले वे सामान कहाँ है !"[२]

अवसाद कितना भी गहरा क्यों न हो उससे उबरने की सम्भावनाऐं बनी ही रहती हैं। एक दीर्घ व्यथित काल-खण्ड जीने के बाद बच्चन के जीवन में, काली अंधेरी रातों को चीर कर, प्रकाश की किरणों की संभावना दिखाई पड़ने लगी। वस्तुतः व्यथा जीवन का आदर्श नहीं वन सकती। जीवन का आदर्श तो प्रसन्नता और जिजीविषा है। बच्चन भी अंधकार और मरण में इतना जूझ चुके थे कि उनके भीतर प्रकाश और जीवन की ओर यात्रा प्रारम्भ करने का संघर्ष प्रारम्भ हो चुका था।

यद्यपि 'निशा निमन्त्रण' 'एकान्त संगीत' तथा 'आकुल अन्तर' में कभी प्रत्यक्ष, कभी ध्वनिश्लेष के माध्यम से सौंदर्यानुभूति को रेखांकित किया जा सका है, किन्तु 'सतरंगिनी' का रचना काल कवि के जीवन में आये प्रकाश का काल था और यह प्रकाश प्रत्यक्ष सौंदर्य के चिर चेतन्त परिदृश्यों को खड़ा कर देता है। व्यथावाही पयोधिमाला पर शोभायमान इन्द्रधनुषी छटा वस्तुतः सौंदर्य के प्रत्यक्ष साक्षात्कार की अभिव्यक्ति है -

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३०५ अपने पाठको से

२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३०६ 'निमा निमन्त्रण' से उद्धृत

काले घनों के बीच में,

काले क्षणों के बीच में,

उठने गगन मे लौ लगी यह रंग विरंग विहंगिनी।

सतरंगिनी, सतरंगिनी।[1]

अब कवि को अपने जीवन आकाश में उदित हुए इन्द्रधनुष के कारण काली रातों से भरी दुनिया में भी सस्मित आनन्द के सुन्दर सत्य का साक्षात्कार होता है -

तुमने देखी दुनिया जिसपर, अंधियारी संध्या छायी,

तूने देखी दुनिया जिसपर, फैल गई रजनी काली;

किन्तु कभी क्या तूने देखा जगती का सस्मित आनन

इन्द्रधनुष की छाया में ?[2]

जीवन में रागात्मक सरोकारों की शुरुआत से, जो प्रकृति कवि के लिये असह्य थी -वही बसन्तोत्सव की मादकता से समरुद्ध परिलक्षित होने लगी -

बहुरंगी सुमनों से लदकर लगी झूमने शाखाऐं।

जिन्हें देख कर नन्दन वन की तरु-मालायें शरमायें।[3]

कवि का मन अन्तः करण में उल्लास, तपस्विनी कोकिला के स्वर में माधुर्य तथा तरु कंकालों पर प्रस्फुटित हरीतिमा तथा बहुवर्णीय पुष्पों से सुगुम्फित झूमती शाखाओं पर मधुपायी भ्रमरावलि के मादक स्वर का सौंदर्यमय साक्षात्कार करता है -

कौन तपस्या करके कोयल, इतना सुमधुर स्वर पाया ?

कौन तपस्या करके, कोकिल, काली कर डाली काया ?

वह सुर, जिसको सुनकर सोया युग का मलयानिल जागा,

जिसको सुन मधुवन पर छाया युग-युग का आलस भागा।

जिसको सुन तरु-कंकालों पर सहसा दौड़ी हरियाली,

सजी नवल, कोमल किसलय से मधुवन की डाली-डाली।

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३२८ - 'सतरंगिनी' शीर्षक से उद्धृत
२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३२७ - 'इन्द्रधनुष की छाया में' शीर्षक से उद्धृत
३ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३३० - 'कोयल' शीर्षक से उद्धृत
४ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३३० - 'कोयल' शीर्षक से उद्धृत

जीवन कितना भी विध्वंस से गुजर रहा हो, किन्तु प्रणयचेतना से प्रसूत सौंदर्यानुभूति प्रियतम के पथ में दीप जलाकर बैठने के लिये विवश कर देती है -

प्रलय की रात में सोचे प्रणय की बात क्या कोई,
मगर पड़ प्रेम बन्धन में समझ किसने नहीं खोई,
किसी के पंथ में पलकें बिछाये कौन बैठा है ?
अंधेरी रात में दीपक जलाये कौन बैठा है ? [1]

कवि प्रमदमना हो प्रमदा के प्रतीक के रूप में नागिन की परिकल्पना करना चाहता है और अपने जीवन-प्रागंण में उसे नर्तित देखना चाहता है। वह कभी उसे रम्भा-सी मोहक, रति सी रूपमती, उर्वशी सी मोहमयी तथा शची-सी मानिनी परिदृष्ट होती है। कवि मन मे प्रमदा का प्रवेश अनन्त सौंदर्य का विविध वर्णी साक्षात्कार कराता है-

''नर्तन कर, नर्तन कर, नागिन, मेरे जीवन के आंगन में !
तू मनोंमोहिनी रम्भा-सी, तू रूप वती रति रानी - सी,
तू मोहमयी उर्वशी सदृश, तू मानमयी इन्द्राणी - सी।'' [2]

अब कवि निराशा की मार से घायल मरणाकांक्षी नहीं रहा, अपितु सप्त स्वर सम्बेष्ठित संगीत से झंकृत सप्तवर्णीय इन्द्रधनुषी दृश्यावलियां तथा मदमत्त हाव-भाव प्रचेष्टित, मदालसित प्रमदाओं की मोहक भंगिमाओं तथा उल्लसित नर्तित मयूरियों का नृत्य देखने वाला, प्रणय याची, आशालु तथ भावशंकुल जिजीविषा बन चुका है। कवि की प्रमदा परणीता बनकर हृदय की अतल गहराइयों पर आधिपत्य स्थापित करती है। प्रमदा का नागिन रूप परणीता के 'मयूरी' रूप में परिवर्तित हो समीरण को सुरभित, बादलों को मधुमय बनाता हुआ पुष्पल इन्द्रधनुष तथा प्रकृति पुरुष को उद्दाम उल्लास न्यौछावर कर देता है -

मयूरी,
नाच, मगन-मन नाच !
धरणि पर छायी हरियाली,
सजी कलि-कुसुमों से डाली;

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३३४ - 'जुनून' शीर्षक से उद्धृत
२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३३४ - 'नागिन' शीर्षक से उद्धृत

मयूरी, मधुवन, मधुवन नाच !

मयूरी,

नाच, मगन मन नाच !

समीरण सौरभ सरसाता,

घुमड़ घन मधुकण बरसाता;

मयूरी, नाच मदिर-मन नाच !

मयूरी,

नाच, मगन मन नाच !

निछावर इन्द्रधनुष तुझ पर,

निछावर, प्रकृति पुरुष तुझ पर,

मयूरी, उन्मन-उन्मन नाच !

मयूरी, छूम-छनाछन नाच !

मयूरी, नाच-मगन-मन नाच [१]

ऐसे भी दिन थे जब कवि पतझड़ में ही मस्त था, किन्तु जीवन में अनुकूलता आने पर पतझड़ से रहित मधुवन का स्वागत नहीं करना चाहता। अब कवि बसन्त और पतझड़ के परिप्रेक्ष्य में सृजन और विध्वंश के अनिवार्य परिवर्तनशील सौंदर्य के सत्य को पहचान गया है -

उस मधुवन का स्वप्न भला क्या जहाँ नहीं पतझड़ आता है;

जहाँ सुमन अपने जीवन पर आकर नहीं बिखर पाता है,

जहाँ ढुलकते नहीं कली की आँखों से मोती के आँसू,

जहाँ नहीं कोकिल का व्याकुल क्रंदन गायन बन जाता है,

मर्त्य अमर्त्यों के सपनों से धोखा देता है अपने को,

अमरों के अमरण जीवन से, मादक मेरी क्षणिक जवानी;

सोच न कर सूखे नन्दन का, देता जा बगिया में पानी। [२]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३३७ 'मयूरी' शीर्षक से उद्धृत

२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३४३ - 'नन्दन और बगिया' शीर्षक से उद्धृत

जब प्रियतमा की प्रेरणामयी शक्ति प्राप्त होती है तो प्रकृति के विध्वंशक रूपों में भी सौंदर्य के दर्शन होने लगते हैं। वस्तुतः बच्चन की चेतना की गहराइयाँ सौंदर्यानुभूति से रिक्त कभी हुई ही नहीं थीं, मात्र दुष्काल की धूल के नीचे दब गई थी -

क्रुद्ध नभ के बज्रदन्तों में उषा है मुस्कराती,
घोर गर्जनमय गगन के कण्ठ में खग पंक्ति गाती;
एक चिड़िया चोंच में तिनका लिये जो जा रही है,
वह सहज में ही पवन उंचास को नीचा दिखाती;
नाश के दुःख से कभी दबता नहीं निर्माण का सुख,
प्रलय की निस्तब्धता से सृष्टि का नभ गान फिर-फिर !
नीड़ का निर्माण फिर-फिर।
नेह का आह्वान फिर-फिर ![1]

प्रियतमा के आगमन के साथ कवि को किरणों से रंगी लाल साड़ी तथा पुष्पों और कलिकाओं से संवारी मांग दिखाई पड़ने लगती है -

रश्मियों मे रंग पहन ली आज किसने लाल सारी,
फूल-कलियों से प्रकृति ने माँग है किसकी संवारी,
कर रहा है कौन फिर श्रृंगार, वीणा बोलती है;
छू गया है कौन मन के तार, वीणा बोलती है ![2]

अपनी प्रियतमा की मुख कान्ति से अभिभूत होकर कवि उसके सामने अभिसारिका बनने का प्रस्ताव रखता है। कवि को आशंका है कि मिलन के क्षण काल चक्र से कुचल कर नष्ट हो सकते हैं। वह अनिवार्य विनाश के पूर्व अपनी प्रेयसी के सौंदर्य का पूर्ण सुख प्राप्त कर लेना चाहता है -

सुमुखि, ये अभिसार के पल, चल करें अभिसार !
काल-सागर में न क्षण-कण ये कही खो जायं,
आदि होते ही न इनका अन्त भी हो जाय;
समय दुहराता नहीं यह स्नेह का उपहार;
सुमुखि, ये अभिसार के पल, चल करें अभिसार ![3]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३४६ - 'निर्माण' शीर्षक से उद्धृत
२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं० ३५३ - 'नई झनकार' शीर्षक से उद्धृत
३ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३५८ - 'अभिसार के पल' शीर्षक से उद्धृत

और अन्त में कवि सतरंगिनी के सातवें रंग में 'विश्वास' शीर्षक के अन्तर्गत अपनी कविता की इन्द्रधनुषी छटा बिखेरते हुए पूर्ण विश्वास से भर जाता है। अब उसे किसी प्रकार का भय नहीं है। वह दर्शनिक हो गया है, वह दृढ़ विश्वास के साथ अपनी कृति को निम्न पंक्तियों के द्वारा विराम देता है -

अब नहीं उस पार का भी भय मुझे कुछ भी सताता,
उस तरफ के लोक से भी जुड़ चुका है एक नाता,
मैं उसे भूला नहीं तो वह नहीं भूली मुझे भी,
मृत्यु-पथ पर भी बढ़ूंगा मोद से यह गुनगुनाता -
अन्त यौवन, अन्त जीवन का, मरण क्या,
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े है ! [१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विषाद और हताशा से विदीर्ण बच्चन के जीवन में एक स्वाभाविक परिवर्तन आया। अब नाशोन्मुख कवि निर्माण की सौंदर्यमयी मानसिकता से जुड़कर नेहाकांक्षी होता है और बार-बार अपने नीड़ का निर्माण करना चाहता है। निराशा की घटाओं पर आशा का आलोक देखता है। तेजी बच्चन के रूप में उसका जीवन ध्वंशमूलक चेतना से उबर कर सृजन धर्मिता में प्रवेश कर गया। शून्यता से ओत प्रोत उनकी चेतना में सौंदर्य बोध की धारा का चिर चेतन्त प्रवाह कल-कल, छल-छल करता हुआ लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा। उनके जीवन आकाश पर छाये काले बादलों के चरित्र में भी परिवर्तन हुआ और अन्धेरा बरसाने के बजाय उन्होंने नयनाभिराम इन्द्रधनुष की सृष्टि की और कवि मानस इस इन्द्रधनुष के सात रंगो में नहा उठा।

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३६५ - 'विश्वास' शीर्षक से उद्धृत

(८) हलाहल

'हलाहल', 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर' के क्रम में ही हुई एक अभिव्यक्ति है, किन्तु अपूर्ण होने के कारण पाठकों के सामने सतरंगिनी के बाद आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बच्चन के जीवन के आकाश पर छाये बादलों से उदित सतरंगी इन्द्रधनुष के रूप में जब तेजी का प्रादुर्भाव हुआ तो एक अवधि तक वे अपने प्रणय-जीवन में कभी प्रमदा और कभी परणीता की भाव भूमियों में विविध क्रीड़ायें करते रहे। तेजी के मादक साहचर्य का सुख भी प्राकृतिक सत्य के नियमानुसार शाश्वत नहीं हो सकता था। कवि तेजी के मदिर तथा सुदढ़ आलिगंन में छटपटाया और एक बार पुनः स्मृतियों के उन संवेगों में पनाह ली जिसे भुलाने के लिये वह तेजी से सौंदर्य, समर्पण, मादकता और प्रणय का प्रयोग करना चाहता था -

आज तुम गत को भविष्यत्
में बदल दो। [1]

अब कवि को दीमकों द्वारा नष्ट की गई हलाहल की याद आती है, जिसके लिये बच्चन का आत्मकथन है - "जिन दिनों हाला के प्रतीक से मेरा मस्तिष्क और हृदय अभिभूत था उन्ही दिनों 'हलाहल' के प्रतीक ने भी मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा था। इसकी रचना में मैं सन् १९३५ के अन्तिम अथवा १९३६ के प्रारम्भिक महीनों में लगा रहा। .... १९३६ मेरे जीवन में भूकम्प का समय था .... जीवन की एक मार्मिक चोट ने क्षय रोग के रूप में मुझ पर आक्रमण किया, लेकिन उसे पराजित होना पड़ा। श्यामा को बचाने के लिये मैंने यमराज से अन्तिम द्वार तक युद्ध किया। उनके अवसान पर मैंने अपने आपको मौत की अन्धकारमयी घाटियों में पाया। 'निशा निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' के गीतों को गाता हुआ जब इस अंधकार से निकला, तो जीवन का प्रकाश आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने लगा। कभी मन इस नई ज्योति से पुनः परिचित व अभ्यस्त होने का मन करता - 'आकुल अन्तर' और 'विकल विश्व' के गीतों में और कभी मन कहता - फिर लौट चलो बीते युग के अन्धकार में, जहाँ 'हलाहल', 'मरघट' और 'अतीत का गीत' अधूरा पड़ा है।" [2]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२७ - 'मिलन-यामिनी' पद सं० ६
२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३७३ - 'कृति परिचय' प्रथम संस्मरण से

इस प्रकार बच्चन् १६३५ में 'हलाहल' की रचना कर चुके थे शेष कृति को उन्होंने बाद में पूरा किया। बच्चन की इस कृति में उनके भोगे हुए यथार्थ से उपजा प्रौढ़ चिन्तन और सर्वत्र व्याप्त वेदना के अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। इसे बच्चन की चिन्तन प्रधान श्रेष्ट रचना कहा जा सकता है। वस्तुतः जिन प्रतीकों का प्रयोग बच्चन ने किया है उनकी अर्थवत्ता भी है। सुरा व्यक्ति के कामनामय स्वप्निल संसार का प्रतीक है, जबकि हलाहल दुःखमय जीवन का कटु सत्य। दर्द से भरे इस संसार में व्यक्ति मात्र सुखों के सपने देखता है, किन्तु सपनों के महल धूल में मिलाकर ध्वस्त हो जाते हैं। इस यथार्थ से परिचित होकर भी कवि बुद्धि के स्थान पर हृदय को प्रधानता देता हुआ अपनी संवेदनाओं को सम्मानित करता रहता है। किसी भी स्थिति में अपना रागात्मक धरातल त्याग नहीं पाता।

यद्यपि उनकी बौद्धिक चेतना सजग है और भाव-निर्मित तिलिस्म के यथार्थ को वे जानते हैं कि नारी के मोहक रूप का चारा डालकर जगत के जंजाल में फंसाने का उपक्रम किया गया है। नारी के प्रति बच्चन की रागात्मक प्रतीति इतनी समर्पित है कि वे सारे कष्ट उठा सकते हैं, किन्तु सौंदर्य की साक्षात्कृति नारी को नहीं छोड़ सकते। उनका स्पष्ट कथन है, कि विष से पूर्ण विश्व रूपी घड़े के मुख पर यदि नारी के अधरों का रस न लगा दिया गया होता तो पुरुष इस घड़े को ठोकर मारकर कब का तोड़ चुका होता, किन्तु नारी के अधरों के मधुरस पान के लिये उसे हलाहल पीना पड़ता है -

जगत-घट को विष से परिपूर्ण, किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उसके मुख पर नारि, तुम्हारे अधरों का मधुसार;
नहीं तो कब का देता तोड़, पुरुष विष-घट को ठोकर मार,
इसी मधु का लेने का स्वाद हलाहल पी जाता संसार ![1]

अधरामृत पान के सम्पूर्ण सन्दर्भ हलाहल से इतने आक्रान्त हैं कि मधु पायी के यावत् जीवन बलात् हलाहल का ही पान करना पड़ता है, किन्तु हलाहल के भय से यदि पुरुष सृष्टि की कमनीय कृति नारी से मुंहमोड़ ले तो बच्चन इसे पौरुष का अनादर मानते हैं

अगर तुमसे लेता मुँह मोड़, विनन्दित होता है पुरुषत्व,
नहीं तो करता मेरा नाश, मुझे छू कर ये घातक तत्व,

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ पृ०सं० ३८१ पद सं० १

अगर जाती है मेरी लाज, करूँगा क्या रखकर मैं सांस,

मनाओ, नभ-दूतों, आनन्द, तुम्हारा सफल हुआ छल-पाश ![1]

'हलाहल' के घातक अस्तित्व को समाप्त करने के लिये जगत रूपी घट को फोड़ कर प्रलय की भूमिका रचना भी कुछ कठिन नहीं। कवि के लिये सुकुमार, सुन्दर तथा मादक चारुत्व से समलंकृता नारी को अनादृत करना असम्भव है, इसी लिये विषम परिस्थितियों में भी उनकी रागात्मक चेतना, सौंदर्यानुभूति के सन्दर्भों से जा जुड़ती है। प्रारम्भ के साथ अन्त के सत्य को चर्चित करता हुआ भी कवि सौंदर्य के अविस्मरणीय बिम्ब छोड़ ही जाता है। प्रातः काल मन्द, सुगन्धित, शीतल तथा स्निग्ध समीर से लहराते आकाश के वातायन पर बैठी सुन्दरी उषा के स्वर्णिम परिधान का चित्रण करके कवि ने सौंदर्यानुभूति का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है। यद्यपि इस स्वर्णिम परिधान को समीरण निर्ममता से पकड़ कर रात्रि की कलुषित कालिमा में डूबो देता है -

गगन वातायन पर आसीन उषा का सुन्दर स्वर्णिम चीर,

सुबह लहराता जो चल मन्द सुवासित, शीतल, स्निग्ध समीर,

वही अति निर्ममता के साथ पकड़ उसके आंचल का छोर,

निशा की कलुषित कालिख बीच उसे बरबस देता है बोर।[2]

'हलाहल' एक दर्शनिक रचना है। सृजन अपने साथ विध्वंश की शाश्वत संभावनाऐं लेकर आता है। जिसका उदय है, उसका अस्त भी है। जिसका आदि है, उसका अन्त भी है। इस यथार्थ के उद्घाटन के समय कवि की लेखिनी से यदा-कदा उच्चस्तरीय सौंदर्य का निरूपण हुआ है, जो कवि की सर्वत्र सजग सौंदर्याग्रही सौंदर्यानुभूति का परिणाम है। 'हलाहल' में कवि विश्व की नाशवान अनिवार्यता पर विशेष प्रकाश डालता है। कहीं वह अकबर की फतेहपुर सीकरी के ढह गये राज महलों पर उगी घास का चित्रण करता है, तो कहीं नूरजहाँ के विलास महलों के खण्डहर दिखाता है, कहीं रूपमती तथा बाज बहादुर की क्रीड़ा स्थली माण्डू के उजड़े राज प्रासादों का चित्रांकन करता है, तो कहीं सीना ताने खड़े प्रासादों में यम की गाज गिरने की अनिवार्यता का सत्य उद्घाटित करता है। विनाश, विध्वंश, विवशता, हताशा, पीड़ा, अवसाद तथा अन्धकार से ओत-प्रोत यह रचना यदि सौंदर्यानुभूति की कमनीय छटा से कहीं सजी दिखाई देती है तो इसका कारण कवि की सौंदर्यबोध के लिये समर्पित अजेय सत्ता है। अमरत्व जिस पर बलिदान किया जा

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३८१ - पद सं० ५
२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३८७ - पद सं० ४४

सके, उस तत्त्व की खोज में मानवीय लालसायें निरन्तर प्रयास रत रहती हैं। इन्द्र धनुष के ऊपर सतरंगा परिधान डालकर बद्धपरिकर हो सुखानुमान में निमग्न मानव की रागात्मक तृष्णा का सौंदर्य बिम्ब दृष्टव्य है -

इन्द्र धनु की बाहों में बांध किसी ने सतरंगा परिधान,
दिया जब उसके तन पर डाल, किया उसने सुख का अनुमान।[1]

तथा निशा सुन्दरी का श्यामल घूंघट खोल कर उसके म्लान मुख को अरुणिमा से धोकर उसे जब चूम लिया तो उसके प्राण विभोर हो उठे -

निशा का श्यामल घूंघट खोल अरुणिमा से धोकर मुख म्लान,
लिया जब इसको सहसा चूम हुए उसके पुलकाकुल प्राण।[2]

इस प्रकार 'हलाहल' में कवि के भोगे यथार्थ से उद्भूत दर्शन के निष्कर्षानुसार- नाश, विध्वंश, अवसाद, हताशा और व्यथा की कृति होते हुए भी यत्र-तत्र सौंदर्यानुभूति के दर्शन होते है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३६८ - पद सं० ११६
२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-३६८ - पद सं० ११६

(६) बंगाल का काल

बंगाल का काल एक ऐसी रचना है जिसमें संवेदनशील साहित्यकार ने बंगाल में आये अकाल की विभीषिका का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। इसे आदि से अन्त तक पढ़ने पर शायद ही कहीं सौंदर्य के दर्शन हों। कवि ने अकाल की विभीषिका का वर्णन करते हुए यह कह कर क्रान्ति का आह्वान किया है -

निकल पड़ो तुम सहसा कहकर -
अपनी रोटी अपना राज
इंकलाब जिन्दाबाद ! [1]

क्रांति की ज्वाला से प्रतप्त इस कृति के पृष्ठों में कहीं-कहीं कवि की आंखों से टपके हुए अश्रुचिह्न तो परिलक्षित होते हैं, किन्तु सौंदर्यानुभूति के लिये इसमें गुंजाइश कहां ! तथापि बच्चन की लेखनी ने इस रचना में भी सौंदर्य का साक्षात्कार कर ही लिया -

जिस पर फैले नदी-सरोवर,
नद नाले वर,
निर्मल-निर्झर,
सिंचित करते वसुन्धरा का
आंगन-उर्वर।
जिसमें उगते बढ़ते तरुवर,
लदे दलों से,
फंदे फलों से,
सजे कली-कुसुमों से सुन्दर। [2]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-४४४
२ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-४१८

(१०) खादी के फूल

'खादी के फूल' कृति महात्मा गांधी के बलिदान को दर्शाती है। इस कृति में कहीं भी स्पष्ट रूप से सौंदर्यबोध के दर्शन नहीं होते हैं। गांधी के व्यक्तित्व के प्रकाशन के समय सौंदर्याभास ही इस रचना का मात्र सौंदर्यबोध है -

वह हंसा तो मृत मरुस्थल में चला मधुमास जीवन-श्वास,
वह हँसा तो कौम के रौशन भविष्यत का हुआ विश्वास,
वह हँसा तो जड़ उमंगों ने किया फिर से नया श्रृंगार,
वह हँसा तो हँस पड़ा इस देश का रूठा हुआ इतिहास। [१]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-१ - पृ०सं०-४५१

(११) सूत की माला

'खादी के फूल' व 'सूत की माला' यद्यपि दो रचनाऐं हैं, किन्तु दोनों में एक ही तथ्य है- बापू की हत्या की प्रतिक्रिया।

दर्द से लवरेज बच्चन की इन रचनाओं में पश्चाताप, करुणा, व्यथा, किंकर्त्तव्यविमूढ़ता तथा संकल्पों की उपस्थिति तो है, किन्तु सौंदर्य विधान की आशा करना व्यर्थ है।

(१२) मिलन यामिनी

'मिलन यामिनी' में तेजी बच्चन से मिलन के सुखद क्षणों की अभिव्यक्ति है। प्रणय निवेदन, समर्पण, श्रृंगार रस से परिपुष्ट इस रचना में सौंदर्यानुभूति अपनी चरम सीमा पर है। कवि कभी अधीर होकर अपने विगत जीवन की व्यथाओं के दीप को जला देने का अनुनय करता है -

आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ।
कल तिमिर को भेद मैं आगे बढूंगा,
कल प्रलय की आंधियों से मैं लडूंगा,
किन्तु मुझको आज आंचल से बचाओ;
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ। [१]

कभी कवि मन अतीत की स्मृतियों में खो जाता है और उसे शीघ्र ही बाहर निकलने की चेष्टा करता हुआ कह उठता है -

आज तुम गत को भविष्यत में बदल दो।
एक युग मैंने गयी की ओर देखा,
पर बदल पाया न उसकी एक रेखा,
रंग सकूँ नव चित्र जिस पर वह पटल दो;
आज तुम गत को भविष्यत में बदल दो। [२]

कभी व्यथाक्रान्त उच्छ्वासों को उल्लास बनाने का आग्रह करते हुए कहता है-

आज तुम उच्छ्वास को उल्लास कर दो।
मैं अतीत अजीत से जकड़ा हुआ हूँ,
भीति-चिन्ता-चक्र में पकड़ा हुआ हूँ,
श्रृंखला को, प्राण, तुम भुजपाश कर दो;
आज तुम उच्छ्वास को उल्लास कर दो। [३]

और कभी प्रिया के समागम से विभोर होकर सारी सृष्टि को वासनामय अनुभव करते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त करता है -

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२५ - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग - पद सं०-६
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२७ - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग - पद सं०-६
3 बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२७ - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग - पद सं०-१०

आज कितनी वासनामय यामिनी है।

दिन गया तो ले गया बातें पुरानी,

याद मुझको अब नहीं रातें पुरानी,

आज ही पहली निशा मनभावनी है;

आज कितनी वासनामय यामिनी है।[1]

और इस मनोदशा में विपरीततायें भी अनुकूल प्रतीत होती हैं और कवि कह उठता है-

प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।

जानता हूँ दूर है नगरी प्रिया की,

पर परीक्षा एक दिन होनी हिया की,

प्यार के पथ की थकन भी तो मधुर है;

प्यार के पल में जलन भी तो मधुर है।[2]

कवि अपनी प्रीति को नया कहने पर भी असहमत है। वह इसे पुरातन सिद्ध करने के लिये प्रतिबद्ध है -

इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत।

मेह तो प्रत्येक पावस में बरसता,

पर पपीहा आ रहा युग-युग तरसता,

प्यार का है, प्यास का क्रन्दन कहो मत;

इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत।

कूक कोयल पूछती किसका पता है,

वह बहारों की सदा से परिचिता है,

इस रटन को मौसमी गायन कहो मत,

इस पुरातन प्रीति को नूतन कहो मत।[3]

प्रणय के इस मादक प्रवाह में बहता हुआ कवि बहुधा सौंदर्य का साक्षात्कार करता है। उसे उसका प्यार प्रातः मुकुलित कुसुम सा सुन्दर प्रतीत होता है -

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३० - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग पद सं०-१६
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३५ - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग पद सं०-२५
३ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३५ - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग पद सं०-२६

प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा।

ठीक है मैंने कभी देखा अंधेरा,

किन्तु अब तो हो गया फिर से सबेरा,

भाग्य-किरणों ने छुआ संसार मेरा;

प्रात-मुकुलित फूल-सा है प्यार मेरा।[1]

कवि वासनामय यामिनी में चन्द्रमा से लिपट कर लजाई हुई चाँदनी का, नभ पर्यंक पर तारावलियों के मोतियों से युक्त, दुग्ध, उज्ज्वला चादर का सौंदर्य वर्णन करता है -

दुग्ध-उज्ज्वल मोतियों से युक्त चादर,

जो बिछी नभ के पलंग पर आज उस पर

चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है;

आज कितनी वासनामय यामिनी है![2]

कवि सांसारिक धरातल पर प्रियतमा से मिलन चेतना की अन्तर्धारा को तरंगायित कर देता है। समस्त मनोजगत सृष्टि में प्रस्फुटित सौंदर्य का साक्षात्कार करता है। प्रिय को लगता है कि समस्त प्रकृति सौंदर्यमयी हो उठी है अथवा सौंदर्य मण्डित होने का उपक्रम कर रही है -

प्राण की यह बीन बजना चाहती है।

चाहती किरणें धरा पर फैल जाना,

चाहती कलियां चटक कर महमहाना,

फूल से हर डाल सजना चाहती है;

प्राण की यह बीन बजना चाहती है।

चाहती चिड़िया बसन्ती गीत गाना,

पत्तियां संदेश मधुऋतु का सुनाना,

वायु ऋतुपति नाम भजना चाहती है;

प्राण की यह बीन बजना चाहती है।[3]

कवि प्रणय विभोर प्रकृति के संदर्भों के आधार पर प्रिया के साथ स्वयं को भी

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३४ - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग पद सं०-२४
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३० - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग पद सं०-१६
३ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२६ - 'मिलन यामिनी' पूर्व भाग पद सं०-१४

विभोर कर देना चाहता है। सन्ध्या के सुहाने समय में रतनारी प्यारी सारी में लिपटी, बसन्त ऋतु के पुष्पित गुलमोहर के नीचे लज्जा से झुकी प्रिया को देख कर, कवि समस्त सृष्टि में सुन्दरम् का साक्षात्कार करता है -

सिंदूर लुटाया था रवि ने, सन्ध्या ने स्वर्ण लुटाया था,
थे गाल गगन के लाल हुए, धरती का दिल भर आया था,
लहराया था भरमाया-सा, डाली-डाली पर गन्ध पवन,
जब मैंने तुमको औ' तुमने मुझको अनजाने पाया था।[1]

'मिलनयामिनी' शनैः शनैः उत्तर भाग में प्रविष्ट होकर कवि के राग रंजित अन्तराल का विस्तार सम्पूर्ण सृष्टि में पसार देती है। विषाद मुक्त पश्चिमी गगन स्वर्ण मेघों से युक्त हो उठता है। बीते दिनों की पीड़ा को विस्मृत कर चुकी धरती पर चैतन्य पछुआ हवाओं के झोंके आने लगते हैं। ग्रीष्म ऋतु का संतृप्त अस्तित्व उच्छ्वास रहित हो उठा। कोई भी वृक्ष अथवा लता अश्रुसिक्त नहीं है। सतत् प्रवहमाण समीरण से प्राणवन्त यामिनी सज-धज कर कितनी सौंदर्यमयी हो उठी है -

सुवर्ण मेघ युक्त पच्छिमी गगन,
विषाद से मुक्त पच्छिमी गगन,
प्रसाद से प्रबुद्ध पच्छिमी हवा,
धरा सजग अतीत को विसार फिर!
न ग्रीष्म क उसाँस का पता कहीं,
न अश्रुसिक्त वृक्ष औ' लता कहीं,
न प्राणहीन हो कहीं थमी हवा,
निशा रही स्वरूप को संवार फिर![2]

इस प्रकार 'मिलन यामिनी' प्रियतमा से मिलन के प्रभाव से रागात्मक ऐश्वर्य के परिप्रेक्ष्य में सुन्दरम् से सराबोर आत्माभिव्यक्ति है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-६३ - 'मिलन यामिनी' मध्य भाग - पद सं०-३०
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-६६ - 'मिलन यामिनी' उत्तर भाग पद - सं०-२

(१३) आरती और अंगारे -

बच्चन ने पूर्ववर्ती तथा समकालीन कवियों से जो प्रभाव ग्रहण किया था उससे उसका अन्तराल इस हद तक प्रभावित हुआ था कि प्रभावक कवियों के प्रति उनकी सहजता ने निर्भेद तथा निश्छदम् तरंगिणी का रूप धारण कर लिया। विविध काल खण्ड के कवियों के साथ तादात्म्य के प्रभाव से कवि काव्य की अजस्र स्रोतस्विनी धारा में विलीन हो गया। उसका पृथक अस्तित्व नहीं रहा। इस उपक्रम में और वैदिक ऋचाओं के उद्गाता ऋषियों, संस्कृत के कवियों, हिन्दी कवियों तथा उर्दू कवियों में विलीन होकर बच्चन ने अपनी सहजता को अभिव्यक्ति दी है। यही नहीं प्रत्येक कलाकृति के साथ भी कवि ने स्वतः को समायोजित किया है। खजुराहो, भुवनेश्वर, काँगड़ा इत्यादि के माध्यम से कवि ने भी अपनी सहज अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। यद्यपि यह रचना कवि की सोच और संवेदना को छूने वाले प्रत्येक कवि, कलाकार, परिदृश्य तथा कल्पना को निर्व्याज रूप से भाव-तूलिका के माध्यम से चित्रांकित करती है, तो भी सौंदर्यबोध की ललित अभिव्यक्तियों से यह रचना रहित नहीं है। कवि की अभिलाषा है कि वह ऐसा गीत गाये कि धरती स्वर्ग से भी प्यारी लगने लगे।

कवि को धरती की तुलना में स्वर्ग को अधिक महिमा मण्डित करना बर्दाश्त नहीं। धरती के रूप, रस, गंध तथा रंजन के सौंदर्य को कवि ने भावाभिभूत होकर प्रस्तुत किया है -

एक गीत ऐसा मैं गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी!
रूपमती रंजित रसवन्ती, गन्धमयी यह भूमि हमारी,
लेकिन फिर भी स्वर्ग प्रशंसित, स्वप्न-कल्पना की बलिहारी!
आज दूर का ढोल, निकट की बीन बजे, दोनों झंकृत हो,
एक गीत ऐसा मैं गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी![1]

पथिक के भाग्य की सराहना करते हुए उसकी क्लान्ति को हरने वाले प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है -

तुम भाग्य सराहो अपना, ऐसा कम होता,

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२२३

विथकित घड़ियों के पास पड़ी अमराई है,

मृदु मंजरियों के सौरभ से मदमस्त हवा,

यह कहती है मधुऋतु की बेला आई है,

किस धुंधले, गहरे, बिसरे युग की हूक सजग,

हो उठती हैं कोमल की पंचम तानों से,

किन आदिम, अस्फुट भावों की सोई ध्वनियाँ,

भौरों के गुन गुन में लेतीं अँगड़ाई हैं, '

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२२२

(१४) प्रणय प्रत्रिका

'प्रणय पत्रिका' कवि के भावानुकूल हृदय की उच्छ्वासों, आशाओं, निराशाओं आदि की मार्मिक अनुभूतियों से परिपूर्ण है। बहुधा सौंदर्य बोध का ध्वनन प्रणय विभोर कवि की विविध मनोदशाओं के माध्यम से होता है। सूक्ष्म मनोवृत्तियों की रागात्मकता से यह रचना समृद्ध है। कुछ गीतों को छोड़ कर प्रत्यक्ष सौंदर्य विधान का अभाव है। जिन गीतों में कवि ने प्रत्यक्ष सौंदर्य निरूपण का आश्रय लिया है वे अत्यधिक मर्मस्पर्शी है। आयरलैण्ड में किलार्नी का प्राकृतिक सौंदर्य देखकर कवि ने विभोर होकर अपने अन्तस्तल में निगूढ़ सौंदर्य का चिर चेतन्त प्रवाह इस प्रकार प्रस्रवित किया है -

> तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर निर्झर-से लहरें केश
> तुम्हारें तन का रेखा कार वही कमनीय, कलामय हाथ,
> कि जिसने रुचिर तुम्हारा देश रचा गिरि ताल-माल के साथ,
> करों में लतरों का लचकाव, करतलों में फूलों का वास,
> तुम्हारे नील झील-से नैन, नीर निर्झर-से लहरें केश।[1]

कहीं-कहीं कवि आशा सम्वेष्टित उत्साह से सौंदर्य का श्रेष्ट विधान कर गया है -

> अब हेमन्त अन्त नियराया, लौट न आ तू गगन विहारी।
> खोल उषा का द्वार झांकती बाहर फिर किरणों की जाली,
> अम्बर की ड्यौढ़ी पर अटकी रहती फिर सन्ध्या की लाली,
> राह तुझे देने को कटते, छटते, हटते नभ से बादल,
> अब हेमन्त-अन्त नियराया, लौट न आ तू, गगन-विहारी।

> जिन सूनी सूखी शाखों में होता तू दिन एक गया था,
> मुझको था मालूम कि उनको मिलने को पहराव नया था,
> नयी-नयी कोमल कोपल से लदी खड़ी हैं तरु-मालायें,
> फूट कहीं से पड़ने को है सहसा कोयल की किलकारी,
> अब हेमन्त-अन्त नियराया, लौट न आ तू, गगन-विहारी।[2]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-११५
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं० ११६

निराशा, हताशा तथा कुण्ठा से ग्रस्त कवि अब मुस्कराना चाहता है। पीड़ा को सुख में परिवर्तित करना चाहता है। वह आशा निराशा, पिपासा, हर्ष, विषाद, विसंगतियां तथा अमृत और विष- जो कुछ उसके पास है - अपनी प्रिय को समर्पित कर देना चाहता है। अपनी चेतना की गहराइयों से अपनी समस्तता को प्रेयसी को प्रदान करने के परिप्रेक्ष्य में अधोप्रस्तुत गीत दर्शनीय है-

मैं दीपक हूँ, मेरा जलना ही तो मेरा मुसकाना है।
आभारी हूँ तुमने आकर मेरा ताप-भरा तन देखा,
आभारी हूँ तुमने आकर मेरा आह-घिरा मन देखा,
करुणामय वह शब्द तुम्हारा-'मुसकाओ' था कितना प्यारा।
मैं दीपक हूँ, मेरा जलना ही तो मेरा मुसकाना है।[1]

प्रियतमा के वियोग में कवि उसकी स्मृतियों में खो जाता है और यही स्मृतियां पीड़ित कवि के जीवन का सहारा बन जाती हैं -

तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाये फिर तुम्हारी याद।
स्वर्ण-चाँदी के कटोरों में भरा था झलमलाता नीर,
मैं झुका सहसा पिपासाकुल मगर फिर हो गया गम्भीर -
भेद पानी और पानी, प्यास में औ' प्यास में भी भेद,
तुम बुझाओं प्यास मेरी या जलाये फिर तुम्हारी याद।[2]

इस प्रकार प्रणय पत्रिका में बहुधा सौन्दर्य-बोध का ध्वनन प्रणय-विभोर कवि की मनोदशाओं के माध्यम से होता है। सूक्ष्म मनोवृत्तियों की रागात्मकता में निगुहृय सौन्दर्य विधान भाविक को निर्व्याज सौन्दर्यानुभूति से साक्षात्कार कराता है। हाँ कुछ गीत ऐसे भी हैं जहां प्रत्यक्ष सौन्दर्य विधान अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान है।

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं० १२६

२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं० ११६

(१५) धार के उधर-उधर -

सौंदर्यानुभूति की दृष्टि से इस संग्रह में विविध मनोदशाओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना ही उसका सौंदर्य है। तब भी बच्चन की सौन्दर्यवादी चेतना का रचना संसार सौन्दर्य विधान के बिना रह ही कैसे सकता था ? कतिपय गीतों में सौन्दर्यानुभूति की प्रतीतियां स्पष्ट रूप से प्ररिलक्षित होती हैं। केसरीय ध्वज के प्रति कवि की असीम आस्था है। स्वाधीनता के समर के दौरान बच्चन भी देश-भक्ति के गीतों की रचना में निमग्न हो गये। 'राष्ट्र ध्वजा' शीर्षक से उन्होंने श्रद्धा निमज्जित सौन्दर्यानुभूति का मनोरम प्रस्तुतीकरण किया है -

नगाधिराज श्रंग पर खड़ी हुई,
समुद्र की तरंग पर अड़ी हुई,
स्वदेश में जगह-जगह गड़ी हुई,
अटल ध्वजा हरी, सफेद, केसरी।

x· · x· · x· · x· · x· · x· · x· · x

चलो उसे सलाम आज सब करें,
चलो उसे प्रणाम आज सब करें,
अजर सदा, इसे लिये हुए जियें,
अमर सदा, इसे लिये हुए मरें,
अजय ध्वजा हरी, सफेद, केसरी।[1]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ पृं०सं० १५८ 'राष्ट्र ध्वजा' शीर्षक से उद्धृत

(१६) बुद्ध और नाचघर

बच्चन का रचना संसार लय और छन्द की मर्यादाओं से अनुशासित है। सर्वप्रथम सन् १९४३ में 'बंगाल का काल' शीर्षक से पहली मुक्त छन्द रचना लिखी गई।

इस संग्रह में आह्वान, सृष्टि, पूजा, तप, वरदान, शोणित की प्यास, हिन्दू और मुसलमान, रात का अपराध, --का जन्म दिन, नया चाँद, डैफोडिल, तुम्हारी नजरों में वे--उनकी नजरों में तुम, रेगिस्तान का सफर, दोस्तों के सदमें, कड़वा अनुभव, शैल विहंगिनी, पपीहा और चील कौवे, चोटी की वर्फ, युग का जुआ, चाँद और बिजली की रोशनी, नीम के दो पेड़, दो तरह के लोग, दिल्ली के बादल, नागिन और देव कन्या, तीन विषयों पर एक रचना, जीवन के पहिए के नीचे, जीवन के पहिए के ऊपर तथा बुद्ध और नाचघर २७ रचनाऐं संग्रहीत हैं। जैसा कि बच्चन ने इस काव्य की भूमिका में स्वीकार किया है कि उसका मात्र नाम ही 'बुद्ध और नाच घर' है। अन्य रचनाओं में बुद्ध के सन्दर्भों को खोजना व्यर्थ है -

"कहने का मतलब यह है कि इसमें विभिन्न परिस्थितियों - मनः स्थितियों में, विभिन्न दृष्टिकोण से लिखी गई कविताऐं संग्रहीत है। 'बुद्ध और नाचघर' की छाया-छाप अन्य कवितायों में देखने या खोजने का श्रम व्यर्थ होगा। .... 'बुद्ध और नाचघर' की कविताओं में एक बाहरी साम्य यह है कि ये सबकी सब मुक्त छन्द में लिखी गई हैं।" [1]

सौंदर्य बोध की दृष्टि से यदि ध्यान दिया जाय तो प्रकृति मूलक दृगगत सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्तियां ही उपलब्ध हो सकेंगी।

'चोटी की वर्फ' शीर्षक रचना में कवि की सौंदर्यानुभूति इस प्रकार से व्यक्त हुई है-

स्फटिक-निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ,
हे हिम-खण्ड, शीतल औ' समुज्ज्वल,
तुम चमकते इस तरह हो,
चाँदनी जैसे जमी है
या गला चाँदी
तुम्हारे रूप में ढाली गई है। [2]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२६५ अपने पाठको से
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३२६ 'चोटी की वर्फ' शीर्षक से उद्धृत

डैफोडिल शीर्षक कविता के माध्यम से कवि का सौन्दर्य-बोध परिलक्षित हुआ है -

डैफोडिल, डैफोडिल, डैफोडिल -
मेरे चारों ओर रहे हैं खिल,
मेरे चारों ओर हँस रहे हें खिल-खिल;
इंग्लैण्ड में है बसन्त - है एप्रिल।
इनका देख के उल्लास,
तुलना को आता है याद,
मुझे अजित और अमित का हास,
जो गूँजता है आध-आध मील -
मेरा भर आता है दिल -
डैफोडिल, डैफोडिल, डैफोडिल -
जो गूँजता है हजारों मील,
मैं उसे सुनता हूँ यहाँ,
हँस रहे हैं वे कहाँ - ओर, दूर कहाँ !
बच्चों का हास निश्छल, निर्मल, सरल
होता है कितना प्रबल ! [1]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-२६२ 'डैफोडिल' शीर्ष से उद्धृत

(१७) त्रिभंगिमा

इस कृति में बच्चन की रचनाऐं तीन अलग धाराओं में प्रवाहित हुई हैं। इस उपक्रम में इन तीनों धाराओं में यत्र-तत्र कवि की 'सौंदर्यानुभूति' के हृदयस्पर्शी दर्शन होते हैं। उत्तर प्रदेश की लोकधुन 'ढिढिया' पर आधारित 'छतनार बिरवा' लोक गीत में एक सघन वृक्ष के परिप्रेक्ष्य में यह भावानुभूति सौंदर्यबोध का दर्शन कराती है। जब-जब इस वृक्ष में फल आते हैं तो अपने फलों से सबकी झोली भरने वाला यह फलदार वृक्ष सौंदर्यबोध का श्रेष्ठ उदाहरण बन जाता है -

मेरे आँगन में खड़ा है छतनार बिरवा,
जब-जब फलने की रुत आती,
इसकी हर डाली झुक जाती,
सबकी झोली भरता है फलदार बिरवा,
फलदार बिरवा, फलदार बिरवा,
मेरे आंगन खड़ा है छतनार बिरवा।[1]

इसी तरह उत्तर प्रदेश की एक और लोक धुन पर आधारित 'महुआ के नीचे' शीर्षक लोकगीत में यह भाव कि जिसका प्रिय उसे भुला न दे उसी की दुनिया सोने की है, उसी की दुनिया मधुवन है, देखो तो महुआ के पेड़ के नीचे मोती झर रहे हैं, सौंदर्यबोध का उत्तम निदर्शन है-

घड़ियां सुबरन,
दुनिया मधुवन
उसको जिसको न पिया बिसरे।
महुआ के,
महुआ के नीचे मोती झरे,
महुआ के।[2]

मुक्त छन्द की प्रस्तुतियों के लिये 'बच्चन' को प्रयोगधर्मी ही कहा जायेगा। यद्यपि उन्होंने 'बुद्ध और नाचघर' जैसी सशक्त मुक्त छन्द रचना दी है। 'त्रिभंगिमा' में 'ताजमहल' शीर्षक कविता सौंदर्यबोध के लालित्य से समृद्ध है। ताजमहल को देखकर कवि कहता है कि ऐ ! शहजहाँ। मनुष्य तो क्या कदाचित काल-संबाह भी ऐसा न कर सके जैसा तूने किया। कल्पना जैसे कोमल

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३७५ - 'छतनार बिरवा' शीर्षक से उद्धृत
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-३८४ - 'महुआ के नीच' शीर्षक से उद्धृत

तथा भावना जैसे उजले पत्थरों से यह धरती और आकाश का यह कोना ऐसा सज गया कि लगता है कोई ताजे श्वेत पुष्पों का दोना जमुना जल मे बहते-बहते इस स्थान पर अटक कर ठहर गया। जिसके मृत अस्तित्व का तूने ऐसा श्रृंगार किया है कि उसके जीवन को तूने कितना दुलार तथा सम्मान दिया होगा -

मानव तो क्या शायद न समय भी कर पाये!
ओ शाहजहाँ, तूने उस जीवित काया को
कितना दुलराया, कितना सन्माना होगा,
जिसकी मुर्दा मिट्टी का यों श्रृंगार किया--
कल्पना-मृदुल, भावना-धवल, पाषाणों से।
सज गई धरा, सज गया गगन का यह कोना,
जमुना के तट पर अटक गया बहते-बहते
जैसे कोई टटके, उजले पूजा के फूलों का दोना![१]

इसी प्रकार अपने शोधकार्य के दौरान बच्चन जी जब इंग्लैण्ड के कैंब्रिज विश्व विद्यालय में थे तो कैम नदी के तट से उन्होंने एक प्रेमी युगल की आँखों में सौंदर्य की अनुभूति की। रूप के पर्वत की चोटियों पर नीला, शान्त और उदार आकाश फैला हुआ है जिसके नीचे हरित, शस्यवती, सरस, उर्वर, स्निग्ध धरती की बाहों में एक छोटा सा सरोवर तरंगायित है -

दूर छाया रूप गिरि की चोटियों पर
टिका फैला,
नील-शान्त-उदार, अम्बर;
और उसके तले
मरकत शस्यवाली,
सरस-उर्वर,
स्नेह-स्निग्ध,
वसुन्धरा की बाहुओं में
पला छोटा-सा सरोवर,
लहर जिसमें उठ मचलने को समुत्सुक।[२]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-४४१
२ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-४१६ 'तुम्हारी आंखो में तब और अब' शीर्षक से उद्धृत

(१८) चार खेमे चौंसठ खूंटे

संवेदना सजग 'बच्चन' की इस रचना में उनकी गत काव्य यात्रा के पदचिह्न दिखाई पड़ते हैं। इस मुकाम तक पहुँचकर उनके अनुभव का संसार पहले से परिवर्तित और विस्तृत हो चुका था जिसका प्रभाव विविध कथ्य और विमर्श की प्रस्तुति के प्रयास में बिखराव लिये प्रसारपूर्ण परिलक्षित होता है। उनका विगत रागात्मक संसार उनकी स्मृतियों में ऐसा रचा बसा है कि येन केन प्रकारेण उनकी प्रणय संवेदनायें स्मृति संचारियों के माध्यम से उपस्थित हो जाती हैं और पाठकों के समक्ष बच्चन के 'सौंदर्यबोध' का कमनीय परिदृश्य उपस्थित हो जाता है -

शब्द के आकाश पर उड़ता रहा,
पद-चिह्न पंखों पर मिलेंगे।
एक दिन भोली किरण की लालिमा ने,
क्यों मुझे फुसला लिया था,
एक दिन घन-मुस्कराती चंचला ने,
क्यों मुझे बहका दिया था,
एक राका ने सितारों से इशारे,
क्यों मुझे सौ-सौ किये थे,
एक दिन मैंने गगन की नीलिमा को,
किस लिये जी भर पिया था ?
आज डैनो की पकी रोमावली में
वे उड़ानें एक धुंधली याद सी हैं;
शब्द के आकाश पर उड़ता रहा,
पद-चिह्न पंखों पर मिलेंगे।[1]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-२ - पृ०सं०-४६३ 'नभ का निमन्त्रण' शीर्षक से उद्धृत

(१६) दो चट्टानें

बच्चन की यह रचना युगीन विसंगतियों, हताशा, निराशा से परिपूर्ण है, अतः इस मानसिकता में कहीं भी सौंदर्य की गुंजाइश नहीं है, फिर भी यदा-कदा कुछ सौंदर्य की झलक परिलक्षित होती है। सुस्थिर, शान्त, संतुलित तथा नव्य व्यवस्था की प्रतिष्ठा का कवि-आकाक्षांओं का सौन्दर्य-बोध दृष्टव्य है -

आज का युग,
आज का जीवन
नया कुछ अर्थ कवि से मांगता है,
जो कि अक्सर नये-शोधे पुरातन से
है उभरता ।
अर्थ-मूल्य दिये गये थे उन्हें
अब वे पुराने पड़ गये हैं;
काल-जर्जर हो
विकुण्डित और विघटित हो रहे हैं।
अव्यवस्था आज बाहर,
किन्तु उससे अधिक भीतर,
केन्द्र जो ठहरा वहां पर।
वह सुथिर हो,
सन्तुलित हो,
शान्त हो तो
शान्ति फैले बाहरी संसार में भी
आज अपने शब्द से
उस केन्द्र को ही
नहीं छूना चाहता हूँ;
वहां कोई मूर्ति,
चाहे हो पुरानी,

एक नूतन पीठिका पर,

नयी विधि से,

दे नया ही कोण, आभा,

मैं प्रतिष्ठित आज करना चाहता हूँ,

उंगलियों में हो न जादू,

आज भी मेरा पुराना कलाकार

जगा हुआ है।[1]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-३ पृ०सं० १०६

(२०) कटती प्रतिमाओं की आवाज़

जीवन के विविध आयामों से गुजरते हुए 'बच्चन' अब पूर्ण परिपक्व हो चुके थे। इनका मानना था कि सौंदर्य सृष्टि में नही दृष्टि में होता है। अनुभव परिपक्व बच्चन ने जीवन के विविध आयामों पर उपक्रम से जो दृष्टि डाली वो कुछ इस प्रकार थी - जैसे फुटवाल का मंजा खिलाड़ी खेल के अभ्यास से विरत होकर अपने प्रौढ़ावस्था में उसी उत्साह से उतर पड़ता है जैसे युवावस्था में उतरा करता था। उसे अपने इस प्रयास में जो विफलताऐं झेलनी पड़ती हैं, वही कवि बच्चन इस रचना में झेल रहे हैं, तो भी ऐसा खिलाड़ी एक आध शॉट तो मार ही देता है। महाबलि पुरम् में मंदिर में स्थापित मूर्ति कला के श्रेष्ट उदाहरण स्वरूप बच्चन का सौंदर्य जाग्रत होता है। इन मूर्तियों के माध्यम से उनके विगत जीवन के प्रसंग भी संस्मृत हो उठते हैं। जब बच्चन ने अपनी प्रख्यात काव्य कृतियाँ रची थीं बच्चन को लगता है कि वह भी पाषाण की शिलाऐं और काल प्रवाह के कलाकार ने छेनी हथौड़ी के माध्यम से उन्हें काट छांट कर इस रूप में सृजित कर दिया है -

'लग रहा
पाषाण की कोई शिला हूँ
और मुझपर छेनिया रख, रख अनवरत
मारता कोई हथौड़ा ....
अरे ! यह तो 'हलाहल', 'सतरंगिनी' यह;
देखता हूँ,
वह 'निशा संगीत' '...... खेमे चार खूंटे';
क्या अजीब 'त्रिभंगिमा' इस भंगिमा में !
'आरती' उलटी, 'अंगारे' दूर छिटके;
धराशाही वहाँ 'मधुबाला' की, चट्टानें पड़ी दो--
आँख से कम सूझता अब --
उस तरफ 'मधुकलश' लुढ़के पड़े रीते।'[1]

---

1 बच्चन रचनावली भाग-३ - पृ०सं०-२६४

इन प्रतिमाओं को देखकर जहाँ बच्चन का अस्तित्व बोध पुनः साम्प्रतिक मनः स्थितियों का साक्षात्कार कराता है वहीं मूर्ति कला में अन्तर्हित ऊर्जा, उष्मा तथा सृजनधर्मिता के संदर्भों से जुड़े सौंदर्य बोध का भी आभास कराता है।

बच्चन प्रश्न करते हैं - क्या सौंदर्याधार कल्पनायें तेज और ताप से रहित हवाई होती हैं। अपनी सुकुमारता और कोमलता के कारण इतनी अस्तित्वमयी होती हैं कि चेतना की गहराइयों पर उनकी छाप नहीं पड़ सकती? महाबलिपुरम् की मूर्तियों से प्रभावित होकर कवि कह उठता है -

> कौन कहता
>
> कल्पना
>
> सुकुमार, कोमल, वायवी, निस्तेज औ' निष्पाप होती?
>
> मैं महाबलिपुरम् में
>
> सागर किनारे पड़ी
>
> औ' कुछ फासले पर खड़ी चट्टानें
>
> चकित दृग देखता हूँ
>
> और क्षण-क्षण समा जाता हूँ उन्ही में।[1]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-३ - पृ०सं०-२६२

(२१) जाल समेटा

सौंदर्यानुभूति की दृष्टि से 'एक पावन मूर्ति' कविता परिगण्य है जिसमें तीर्थाधिराज जगन्नाथ के मन्दिर की चौकी में स्थापित दो मिथुन मूर्तियों को विशेष प्रशंसा के साथ वर्णित किया गया है। इन मूर्तियों के संदर्भ में कवि मधुशाला का पद भाव साम्य की दृष्टि से प्रस्तुत करता है-

'मधुशाला' का पद एक
अचानक कौंध गया है कानों में -
नहीं जानता कौन, मनुज
आया बनकर पीने बाला ?
कौन, अपरचित उस साक़ी से
जिसने दूध पिला डाला ?
जीवन पाकर मानव पीकर
मस्त रहे इस कारण ही,
जग में आकर सबसे पहले
पायी उसने मधुशाला।[१]

इन मूर्तियों के समर्थन में कवि कहता है कि किसी पूर्व योनि में उसने ही यह मूर्ति गढ़ी है। कवि का कथन है कि इस मूर्ति को देखकर जिसकी आँखें लज्जा से नीची हो जाती हैं। उस व्यक्ति को क़ला का, जीवन का, धर्म का ज्ञान ही नहीं -

यदि मूर्ति देख यह
तेरी आँखें नीचे को गड़ती
लगती है तुझे शर्म,
(जीवन के सबसे गहरे सत्य
प्रतीकों में बोला करते।)
तो तुझे अभी अज्ञात
कला का,
जीवन का,
धर्म का,
मूढ़मति,
गूढ़ मर्म।[२]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-३ - पृ०सं०-३६४
२ बच्चन रचनावली भाग-३ - पृ०सं०-३६५

कवि बच्चन ने तीर्थराज श्री जगन्नाथ के मन्दिर की चौकी पर जो मूर्तियाँ देखी हैं उनका बिम्बात्मक चित्र उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया है -

श्री जगन्नाथ के मंदिर की चौंकी में
जो मिथुन मूर्तियां लगी हुई है
मैं उन्हे देखता एक जगह पर ठिठका हूँ -
प्राकृतिक नग्नता की सुषमा में ढली हुई
नारी घुटनों के बल बैठी;
उसकी नंगी जंघा पर नंगा शिशु बैठा
अपने नन्हे-नन्हे सुकुमार,
अपरिभाषित सुख अनुभव करते हाथों से
अपनी जननी के पीन पयोघर पकड़े

x..x..x..x..x..x..x..x

तृष्णा स्तन के सरस परस की तृप्त हुई
भोली-भाली, नैसर्गिक सी मुसकान बनी
गालों, आँखों, पलकों, भौहों से छलक रही।[१]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-३ - पृ०सं०-३६३

(२२) नई से नई पुरानी से पुरानी

सार्थक सोच की सबल और सफल अभिव्यक्ति का अपना एक अलग अस्तित्व होता है। इतस्ततः उनकी कविताओं में विचार सौंदर्य के अतिरिक्त भाव सौंदर्य के भी दर्शन होते हैं -

और किसी दिन
पवन की लहरो पर बहते-उतराते,
यज्ञ, भूमि के समान,
स्नेह-गन्ध,
पहुँच जाओ उन तक,
जैसे कोई संकोची प्रेमी
आधी रात दबे पांवों चलकर
अपनी प्रेमिका के द्वार पर
हाथों से नहीं
सांसों से, दे दस्तक।[1]

उपर्युक्त कविता में सांसों से दस्तक देने का श्रृंगारमय भाव सौंदर्य-दर्शनीय है। यूँ तो उनकी इस रचना की अधिकांश कविताओं में शब्द सौंदर्य के प्रभविष्णु दर्शन होते है। सोच और संवेदना के विविध परिदृश्यों से परिपूर्ण इस कृति में दृश्य सौंदर्य विधान के भी मनोहारी बिम्ब दिखाई पड़ते हैं। क्षितिज व्यापी जल सरोवरों, महामाणिक सदृश उगते सूर्य का क्रमशः समुज्वलित महाहीरक सा होता स्वरूप जो सलिल तल में अतल तक समा जाये उस आदि सृष्टि प्रभातकालीन अति पुरातन कालीन सूर्य सदृश हे हंस तुम्हारा कुछ ऐसा ही स्वरूप उद्भाषित होता है जिसकी ऊर्जा और उष्मा का चका चौंकधीय अस्तित्व नगें नैनो से देखा नहीं जा सकता -

हंस !
ओ तुम धुर पुरातन,
वाल्य सृष्टि प्रभात में
आक्षितिज जल-तल पर विराजे;
सूर्य सद्यः उदित मानो महा मणिक-सा

---

१ नई से नई पुरानी से पुरानी - पृ०सं०-१६ - 'सांसो की दस्तक' शीर्षक से उद्धृत

तुम्हारा प्रभा मण्डल;
महामाणिक जब महाहीरक हुआ प्रोज्जवलित क्रमशः
प्रभा मण्डल से निकल तुम
विश्वव्यापी एक आभा बन अरूपी।
सलिल में तल से अतल तक जा समाये -

ताप बनकर,

तेज बनकर,

नग्न नयनों से जिसे देखा न जाये,
ध्यान में मन की शिरा में थरथराए ![1]

---

१ नई से नई पुरानी से पुरानी - 'काला हंस' शीर्षक से उद्धृत - पृ०सं०-६३

अध्याय - ५

बच्चन के काव्येतर कृतित्त्व में सौंदर्यानुभूति

बच्चन के काव्येतर साहित्य में सौंदर्यानुभूति के दर्शन काव्य की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। उनकी आत्मकथा, निबन्ध, पत्र, डायरी और कहानियां सभी कुछ वर्णनात्मक शैली में है यथापि यत्र-तत्र सौंदर्यानुभूति प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से परिलक्षित होती है -

(i) आत्मकथा में

उन्होंने अपने इष्ट मित्रों के साथ बिताये क्षणों में जो कुछ भी अनुभव किया, वह खुलेमन से चाहे वह विषय एकान्त चिन्तन का हो या सार्वजनिक सभी को अपनी कलम का हिस्सा बनाया। अपने अभिन्न मित्र कर्कल के साथ एकान्त में बैठकर पढ़ी कोकशास्त्र की पुस्तक-जो तस्वीरों के साथ उनके सामने थी - इस पुस्तक के आधार पर उन्होंने नारी पुरुष का व्यवहार के अनुसार वर्गीकरण कर डाला। उन्होंने अपने को मृग वर्ग में रखा। वे नारी के प्रति अत्यधिक आकृष्ट रहे। उन्होंने कर्कल की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी चम्पा से आकृष्ट होकर शारीरिक सम्बन्ध बना डाले, जिसकी स्वीकारोक्ति उनकी आत्मकथा में है। उन्होंने चम्पा के सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार किया है -

''चम्पा कनकछरी-सी एकहरे बदन की लमछर, गौर वर्ण की लड़की थी।...... मैंने उसका स्वाभाविक रूप तीन चार महीने बाद देखा; जब वह हल्के नीले रंग की साड़ी में बिना कोई आभूषण पहने अपनी छत की मुंडेर पर उस ओर आकर बैठ गई थी, जिस ओर मोहन चाचा के घर का आंगन था। छत के ठीक कोने पर नीचे आंगन में लसोड़े का एक पेड़ था, जिसकी शाखायें मुंडेर से कुछ ऊँची चली गई थी। लसोड़े की डाल पत्तियों में कुछ मुंदा कुछ खुला रूप ही उसका सहज स्वरूप था।'' [१]

उपर्युक्त पंक्तियां चम्पा के बिम्ब के माध्यम से पाठको को सौंदर्यानुभूति कराती हैं।

कवि बच्चन को अपने पिता के जन्मस्थल ललितपुर जाने का भी अवसर मिला, जहाँ के बारे में सुन कर उनके मन में जो उद्‌गार प्रस्फुटित हुए वे सौंदर्यानुभूति से ओत प्रोत हैं -

---

१ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' पृ०सं० - ४२

"मैंने अपने लड़कपन में पहले राधा से और फिर अपने पिता जी से ललितपुर का जो वर्णन सुना था उससे वह मेरी स्मृति में एक भावना केन्द्र के समान बन गया था। मनुष्य का बचपन जिस माटी में लोटता है, मनुष्य का लड़कपन जिस धूलि में खेलता है, वह उसके व्यक्तित्व में इ तनी रच बस जाती है कि उस अलगाना, झाड़ देना या भुला देना असंभव होता है। मुखर भावुकों में यही मिट्टी बोलती है। प्रतिभावान इस मिट्टी को कितना सजीव बना जाते हैं। मुझे टैगोर गोर्की याद आ गये हैं - दोनों ने अपने बचपन की धरती को कितना दुलराया है। जीवन जो सहजभाव से करता है, साहित्य उसी की तो पकड़ और परिष्कार है।" [१]

बच्चन ने अपने जन्म के विषय में लिखा है कि उनकी माँ ने बड़ी मन्नतों से पाया है और गर्भावस्था में हरिवंश पुराण सुना। इसी कारण से बच्चे का नाम हरिवंश रखा गया। नव जात शिशु की किसी तरह रक्षा हो सके इस कारण से उसे किसी को बेच दिया जाता था। इस प्रकार की पृथा पहले परिवारों में प्रचलित थी। बच्चन को भी उनकी माँ ने लछमिनियां चमारिन के हाथों पांच पैसे में बेच दिया था और उन पैसों के बताशे मंगा कर माँ ने खा लिये थे। बच्चन जब बोलना सीख रहे थे तभी उन्हे चमारिन अम्मा कहकर बुलाना सिखाया गया, किन्तु बोल पाने में असमर्थ बच्चन छोटा नाम चम्मा कह कर बुलाने लगे। चम्मा के विषय में उन्होंने जो लिखा है उसमें सौंदर्यानुभूति के दर्शन होते हैं -

"चम्मा मझोले कद की व एकहरे बदन की स्त्री थी। रंग सांवला पन लिये, नाक नक्श सुडौल उभरे हुए, वह मुझे अपनी माँ से अधिक, सुन्दर लगती थी। बोली उसकी पतली सुरीली थी, दैन्य विनम्र आँखे उसकी किसी भीतर ही भीतर पी वेदना से आर्द्र। अब मैं उसकी वेदना की कुछ कल्पना कर सकता हूँ। मुझे मोल लेने के बाद उनके कोई सन्तान नहीं हुई - उनके मन में कहीं यह बात तो नहीं बैठ गई थी कि उसने पांच पैसे में अपनी निःसन्तानता खरीदी थी। किसी रूप में उसकी वत्सलता का आधार हो सकता था तो एक मैं-उसका होकर कितना न उसका। ऐसी स्थिति में मैं यह अनुमान सहज ही कर सकता हूँ कि वह मुझे किस भाव - अभाव भरी दृष्टि से देखती होगी और इसे सोचकर मेरा मन भर आता है।" [२]

---

१ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' पृ०सं० - ५२-५३
२ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' पृ०सं० - ८७

(अ)- क्या भूलूँ क्या याद करूँ

कवि बच्चन ने जो कुछ उनके जीवन में घटा उसे उन्होंने ज्यों का त्यों अपनी आत्मकथा में व्यक्त कर दिया। वे अपनी संवेदनाओं में पूरे संसार को समेट लेना चाहते थे। "क्या भूलूँ क्या याद करूँ" में जन्म से लेकर विद्यार्थी जीवन, श्यामा से प्रथम विवाह एवं उसकी मृत्यु की घटनाऐं क्रमशः अंकित हैं। पत्नी की मृत्यु के बाद कवि की जीने की इच्छायें समाप्त हो रही थीं। ऐसे समय में श्यामा की मधुर स्मृतियां उनके कवि हृदय को जागृत कर देती थीं - 'निशा निमन्त्रण' 'आकुल अन्तर', 'एकन्त संगीत' श्यामा की यादों का ही परिणाम है। नव विवाहित श्यामा से मिलन की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है -

"उन दिनों पति पत्नी के लिये कोई अलग से कमरा न था। हम रात को ही एक दूसरे से मिल पाते थे। .... घर के लोग सोने का बहाना बनाकर मुँह फेर का लेट जाते और मैं दबे पांव एक बंद कमरे में चला जाता जहाँ श्यामा मेरी प्रतीक्षा करती होती। कभी-कभी मुझे भय होता कि हम दोनों की खिलखिलाहट निश्चय बाहर सुनाई पड़ रही होगी और लोग अगर जागते होंगे तो क्या सोचते होंगे। उन दिनों अपने जीवन को मैं पंत जी की इन पंक्तियों से ही सबसे अच्छी तरह व्यक्त कर सकता हूँ - 'उच्छ्वास' से मेरा परिचय हो चुका था और बाद में मुझे ऐसा लगा कि जो मैं जीने भोगने वाला था, जैसे उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने कई वर्ष पूर्व कर रखी थी, ऐसे ही अनुभव किसी कवि को प्रिय बना देते है --

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया,
नित मधुर मधुर गीतों से
उसका डर था उकसाया।
कह उसे कल्पनाओं का
कल कल्पलता अपनाया,
बहु नवल भावनाओं का
उसमें पराग था पाया।
मैं मंद हास सा उसके
मृदु अधरों पर मंडराया

औ उसकी सुखद सुरभि से

प्रति 'निश' समीप खिंच आया।

पंत जी क्षमा करेंगे मैंने उनके प्रतिदिन को 'प्रति निशि' कर दिया है। मुझे अपने अनुभव के प्रति सच्चा होना चाहिए और मेरे अनुभव में बस 'दिन' और 'रात' का फर्क था।''[१]

इन्टर की परीक्षा पास करने के पश्चात् पिता ने पुनः नौकरी करने का आग्रह किया, किन्तु श्यामा ने बी० ए० करने के लिये एक पत्र लिखा। श्यामा की अपने प्रति अटूट श्रद्धा और प्यार की भावना को दर्शाते हुए बच्चन ने लिखा है -

''श्यामा से मैंने जाने किस तरह पूछा था कि मैं अवश्य बी०ए० पास करूँ। इसकी आशंका बिल्कुल छोड़ दूँ कि वह किसी तरह मेरे पथ की बाधा बनेगी। पत्र के साथ उसने एक सौ का नोट रख दिया था कि उससे मैं युनिवर्सिटी में अपना नाम लिखा लूँ और कोर्स की किताबें खरीद लूँ। ये रुपये उसके किसी सम्बन्धी ने उसे अपने लिये स्वर्ण कुण्डल बनवा लेने के लिये दिये थे। उसने मुझे बस एक वाक्य लिखा था कि कुण्डल से जरूरी यह है कि आपकी पढ़ाई जारी रहे। श्यामा साल भर में इतनी परिपक्व हो गई थी - कितनी जल्दी छोटी से बड़ी। रुपये की मुझे जरूरत थी, मैंने रुपये ले लिये और पहलीवार मुझे आभास हुआ कि श्यामा साधारण लड़की नहीं है। .. ऐसी लड़की के योग्य बनने के लिये मुझे साधना करनी पड़ेगी।''[२]

बच्चन जी की उक्त पंक्तियों को पढ़ने से वास्तव में पाठक के मन में सौंदर्यानुभूति के साथ-साथ श्यामा के प्रति श्रद्धा का भाव जाग्रत होता है।

कुछ समय के पश्चात् जब श्यामा गौने की विदा होकर ससुराल आयी तो बुखार से पीड़ित थी। पुराने जमाने मे परिवार में मान मर्यादा अधिक होने के कारण स्त्री की देखभाल उसके परिवारीजन करते थे। पति को निकट आने का अवसर कम ही दिया जाता था, किन्तु बच्चन ने श्यामा से अधिक प्यार होने के कारण अपनी हठ मनवा कर उसकी चारपाई अपने कमरे में ही डलवाई। श्यामा के प्रति अटूट प्रेम का यह दृश्य सौंदर्यानुभूति से परिपूर्ण है -

''चारपाई से चारपाई मिला ली और ऐसा अनुभव हुआ जैसे हमारे शरीर ही एक दूसरे से मिल गये हो। नींद तो मुझे नहीं आ रही थी, न उसे ही पर मैंने सोचा, मैं सो जाऊँगा तो यह भी सो जायेगी। मुझे याद है, उसके बालों की एक लट अपनी उंगली पर लपेट ली और आँख

---

१ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' पृ०सं० - १५४

२ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' पृ०सं० - १५८

मूँद ली पर न श्यामा सो रही थी और न मैं सो रहा था। बहुत दिनों के बाद मैं उस रात के भावों को वाणी देने के योग्य अपने को पा सका" -

"मनाकर बहुत एक लट मैं तुम्हारी
लपेटे हुए पोर पर तर्जनी के
पड़ा हूँ, बहुत खुश, कि इन भांवरों में
मिले फारमूले मुझे जिन्दगी के,
भँवर में पड़ा सा हृदय धूमता है,
बदन पर लहर पर लहर चल रही है,
न तुम सो रही हो न मैं सो रहा हूँ
मगर यामिनी बीच में ढल रही है।" [१]

धीरे-धीरे समय गुजरता रहा और एक समय ऐसा आया जब श्यामा चिर निद्रा में विलीन हो गई और कवि बच्चन के पास सिर्फ उसकी यादें रह गई सिर्फ यादें। इन यादों के बीच गहन अंधकार में भटकता हुआ कवि अपने आप ही उत्तर ढूंढ लेता है और अपने भावों को कुछ इस प्रकार व्यक्त करता है -

कालिमा से पूर्ण पथ पर
चल रहा हूँ मैं निरन्तर,
चाहता हूँ देखना मैं इस तिमिर का छोर।
ज्योति की निधियाँ अपरिमित
कर चुका संसार संचित,
पर छुपाये है बहुत कुछ सत्य यह तम घोर। [२]

उपर्युक्त पंक्तियों में सौंदर्यानुभूति के साथ-साथ कवि हृदय की मार्मिक भावना समाहित है। इन्हीं पंक्तियों के साथ बच्चन 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' आत्म कथा के प्रथम सोपान को विराम देते हैं। यह आत्म कथा आद्योपान्त वर्णनात्मक होते हुए भी सौंदर्याग्रही है और पाठकों को मनोयोग से पढ़ने को बाध्य करती हैं इसमें कोई संदेह नहीं।

----

१ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' पृ०सं० - १७१
२ 'क्या भूलूं क्या याद करूं' पृ०सं० - २१७

(ब) नीड़ का निर्माण फिर

सौंदर्यानुभूति की दृष्टि से यदि 'नीड़ का निर्माण फिर' का विश्लेषण किया जाय तो हम पाते हैं कि एकाकी जीवन में विचरण करते-करते जब कवि के निजी जीवन में जीवन साथी का पदार्पण हुआ तो उनके निराश मन ने एक नीड़ का निर्माण किया। उस समय अनेक ऐसे प्रसंग आये जो सौंदर्यानुभूति से ओत प्रोत हैं। सर्व प्रथम हम उनके एकाकी मन को पढ़ने का प्रयत्न करते हैं जब वे श्यामा की यादों में खोये मिलन के पलों का वर्णन करते है -

"श्यामा ने अपने बिस्तर से हाथ पकड़ कर मेरा हाथ पकड़ लिया था - हमारी खाटें मिली रहती थी और उसके दुर्बल शीतलस्पर्श से मैं जाग गया था। मुझे जगाने का उसका यह तरीका था, सुबह हो गई थी।" [१]

श्यामा के अनन्तनिद्रा में समाने के दुःखद क्षण का दर्द प्रीति के स्मृति संचारी से दूरागत भावप्रवण 'सुन्दरम्' का ही प्रच्छन्न रूप है -

"श्यामा अनन्त निद्रा में सो गई थी। उसके प्रति निवेदित किसी बात का अर्थ केवल बच्चन के लिये हो सकता है श्यामा के लिये नहीं।

साथी सो न कर कुछ बात
बात करते सो गया तू
स्वप्न में फिर खो गया तू
रह गया मैं और आधी बात, आधी रात।" [२]

एक बार श्यामा ने कहा था कि मेरे सभी कागज पत्रों को जला देना। कवि बच्चन उन पत्रों को पढ़ने जाते और एक-एक पत्र मोमबत्ती के समक्ष जलाते जाते। उस समय की अनुभूतियों को कुछ इस प्रकार चित्रित किया गया है -

"मैं एक मोमबत्ती जलाकर बैठ जाता और एक-एक कागज उठाकर उसकी लौ में लगाता जाता। कभी जलाने के पहले कागजों को पढ़ता भी, विशेषकर चिट्ठियों को, कभी किसी पुराने विस्मृत प्रसंग पर मेरी आंखों से आँसू बह चलते, नीचे मोमबत्ती के आंसू ढुलकते - मेरे उन क्षणों की एक मात्र संगिनी।" [३]

---

१ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १२
२ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १८
३ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - २८

श्यामा के देहावसन के बाद बच्चन कवि सम्मेलन के माध्यम से अपनी रचनाओं को अभिव्यक्ति देने लगे। 'निशा निमन्त्रण', 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'एकान्त संगीत' उसी समय की रचनाऐं हैं। धीरे-धीरे कवि घोर निराशा के अंधकार से निकलने के लिये अथक प्रयास करने लगता है। उसकी जिजीविषा बढ़ जाती है, वह आगे बढ़ना चाहता है और नये संकल्पों के साथ पुनः यह कहते हुए जीवन जीने का पक्ष रखता है -

"जब कोई अन्धकार इतना सघन होता है कि उस पर बिजली की चमक तारों की ज्योति, चन्द्रमा की ज्योत्सना, सूरज की प्रखर किरणों का भी कोई असर नहीं होता तब उसे दूर करने को प्रकृति, प्रेम का दीपक जलाती है। मेरे अन्तर में जो अकेलापन, सूनापन, उदासी, जीवन की निष्प्रयोजना, व्यर्थता, आस्था, विश्वासहीनता और जो अपने में खिंचकर संपुटित हो जाने, समाप्त हो जाने की आकुलता थी उसका सम्मिलित नाम मैंने अंधकार रख दिया था।"[1]

कवि ने 'एकान्त संगीत' की रचना की जिसके एक गीत के बारे में कवि बच्चन ने कहा है -

"यह मेरे उस क्षण का साक्षी हैं जब अपने सूनेपन से सिर ऊपर उठाकर मैंने एक सपना देखा था, जो मुझे अपने सूनेपन से अधिक सुन्दर लगा था, जिसके सामने मेरा मन चंचल दुर्बल हो उठा था, जिसके प्रति मेरे मन में ममता जगी थी - ममता, जिसे कुचल कर देवत्व के आसन पर पांव धरने के बजाय उसे हृदय में स्थान दे, अकिंचन मानव बनने, बने रहने में मैंने अधिक गौरव का अनुभव किया था। वह सपना शायद अपनी प्रवृत्ति से-जो लज्जालुता भी हो सकती थी और निष्ठुरता भी - शायद मेरे ही दृष्टि दोष से मेरे निकट साकार तो न हो सका था, पर उसने जो ममता जागृत की थी वह अपनी निराशा में इतनी करुण हो गई थी कि उसने एक दिन एक सुन्दर, स्वस्थ, संवेदनशील सत्य को ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया।"[2]

गवर्नमेंट ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद से एल०टी० करने आई उमा और प्रेमा सिविल लाइन्स के एक मिशनरी वुमेन होस्टल में रहने लगी थीं, उन दोनों के शारीरिक गठन का वर्णन बच्चन ने इस प्रकार किया है -

"आकर्षक दोनों को ही कहा जा सकता था, प्रेमा अपने सौंदर्य को बढ़ाने में प्रसाधनों की पर्याप्त सहायता लेती थी, उमा जैसी भी थी अपने सहज रूप में - कद में कुछ छोटी,

---

१ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १८४
२ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १८६

शरीर से बहुत दुबली नहीं, चेहरा लम्बे से अधिक गोल, आँखें बड़ी, नाक अनुपाततः कुछ छोटी। स्वभाव में उमा कुछ भावों मे स्थिर और गम्भीर लगती थी, आत्मदान के लिये उन्मुख, प्रेमा अपनी बौद्धिक कुशाग्रता के प्रति सचेत और यथा अवसर यथा इच्छा भावों में डूबने और भावों के ऊपर उठने में सक्षम, दूसरे से प्राप्ति के लिये सकाम।''[१]

उमा की सहेली आयरिस से जब बच्चन का साक्षात्कार हुआ तो बच्चन उसके रूप सौंदर्य को देख कर ठगे से रह गये और उन्होंने उसके शरीरिक गठन का नख से लेकर शिखा तक वर्णन कर डाला। उसे देख कर उनका कवि हृदय झंकार उठा और जिसकी अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों के माध्यम से हुई -

''तुम्हारे नील झील से नैन,
नीर निर्झर से लहरे केश।[२]

कुल मिलाकर उसके चेहरे पर एक ताजगी, एक प्रसन्नता, एक भोलापन जो अपने प्रति सचेत हो सहज संकोची हो गया हो, पर जिसे भावना में बह जाने से रोकने के लिये उसके दूरभेदी नेत्र सदा सतर्क हों, - सांप के से, इतने अन्तर से, दूसरे पर आक्रमण करने के लिये उनकी दीठ बांधने वाले नहीं, दूसरा आक्रमण करना चाहे तो उसका दृष्टिबंध कर सकने वाले। उसने हरे ब्लाउज पर सफेद सारी पहन रखी थी।''[३]

उमा आदित्य के प्रति आकर्षित थी और आदित्य भी उमा से प्रेम करते थे। उनका नियमित पत्र व्यवहार होता था। बच्चन ने उन प्रेमी युगल का वर्णन आत्मकथा में इस प्रकार किया है-

''जहाँ दो प्रेमी युगल--आदित्य और उमा - बैठे हों, एक दूसरे को प्यासी आँखों से देख रहे हों, एक दूसरे की बात में घुल-पुलकाकुल हो रहे हों, वहाँ प्रेम की एक लहर चलती है। पता नहीं आपको कभी ऐसा अनुभव हुआ या नहीं। उसका एक धक्का मैंने अनुभव किया, शायद आयरिस ने भी किया हो।''[४]

एक अधेड़ उम्र की युवती पंत जी से मिलने आयी वह बच्चन को बहुत चाहती थी और पंत जी के माध्यम से अपनी व्यथा उन तक पहुँचाना चाहती थी। पंत जी ने उसकी व्यथा जब उसके ही शब्दों में बच्चन को सुनाई तो बच्चन ने प्रतिक्रिया स्वरूप में इतना ही कहा -

---

१ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १८७
२ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १८६
३ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १८६
४ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - १६१

"मैं एक बार उससे मिलकर के बस एक बात कहना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है उसका मन शान्त हो सकेगा। सुख की एक सांस पर होता है अमरत्व निछावर। जीवन की बहुत सी अनास्थाओं के बीच भी मुझे अभी उस एक बूंद में विश्वास है जो सुधामयी बन सकती है गिरकर अधरों से अधरों पर।" [१]

बाद में मालूम हुआ कि उसने श्री लंका में सर्विस कर ली और गूंगे, बहरे व अंधे की संज्ञा जो बच्चन को उसने दी थी, उसने उन्ही मानव कमियों की पूर्ति का भार स्वीकार कर लिया।

बच्चन ने लिखा है -

"एक क्षण एक युग का परिष्कार कर सकता है,
पर वह क्षण कितना दुष्प्राप्य होता है।" [२]

एक बार बच्चन को अपने मित्र प्रकाश के पास बरेली आने का अवसर मिला जहाँ उनकी मुलाकात तेजी सूरी से हुई। बच्चन ने उनके शरीरिक सौंदर्य के विषय में लिखा है -

"मिस सूरी कमरे में प्रवेश करती है - मुस्कराती -मझोले कद की, एकहरे बदन की गौरवर्ण की, चेहरा अंडाकार, आँखें बड़ी, नाक लम्बी, होंठ न भरे न पतले, दांत चमकीले और ठुड्डी इतनी गोल कि बस नुकीली होने से बच गई हो - बिल्कुल ग्रीक महिला का सा मुख। उन्होंने अपने चेहरे के चारों तरफ स्याह पतली चुन्नी लपेट रखी थी जिससे उनके चेहरे का गौर वर्ण और भी निखर उठा था - आँखों में नींद की नर्मी अभी अटकी अटकी। उन्होंने फलसई रंग की सलवार कमीज पहन रखी थी।" [३]

प्रकाश ने बच्चन का परिचय तेजी को दिया व प्रेमा ने तेजी का परिचय बच्चन को। दोनों एक दूसरे से मिलकर अभिभूत हुए। चाय पर ही प्रकाश ने बच्चन से कविताएं सुनने का आग्रह किया। कवि बच्चन ने अपनी चुनिन्दा रचनाओं में से एक रचना मिस सूरी के समक्ष प्रस्तुत की - कमरे में आदित्य और उमा, प्रेमा और प्रकाश उनके साथ बैठे थे। नीले शेड का लैम्प हल्का नीला प्रकाश कमरे में फैला रहा था -

---

१ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - २२३
२ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - २२३
३ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - २३३

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ
मैं दुखी जब-जब हुआ
संवेदना तुमने दिखाई
मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा,
रीति दोनों ने निभाई,
किन्तु इस आभार का अब
हो उठा है बोझ भारी
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?
एक भी उच्छ्वास मेरा
हो सका किस दिन तुम्हारा ?
उस नयन में बह सकी कब
इस नयन की अश्रु धारा ?
सत्य को मूँदे रहेगी
शब्द की कब तक पिटारी ?
क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?
क्या करूँ ?[1]

उक्त गीत सुनकर तेजी सूरी भाव विभोर हो उठी। बच्चन ने उनकी मनोदशा का एक ऐसा चित्र खींचा है जिससे सौंदर्यानुभूति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है -

"देखता हूँ कि मिस सूरी की आँखे डब डबाती है और टप-टप उनक आँसू की बूंदे प्रकाश के कंधे पर गिर रही हैं और यह देख कर मेरा कंठ भर आता है ..... मेरा गला रुंध जाता है ..... मेरे भी आँसू नहीं रुक रहे हैं और अब मिस सूरी की आँखों से गंगा - जमुना बह चली हैं। मेरी आंखों से जैसे सरस्वती ..... कुछ पता नहीं कब प्रकाश, प्रेमा व आदित्य कमरे से निकल गये और हम दोनों एक दूसरे से लिपट कर रो रहे हैं। आंसुओं के उस संगम से हमने एक दूसरे से कितना कुछ कह डाला है। एक दूसरे को कितना सुन लिया है, उन आंसुओं से कितने

१ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० २३६

कूल किनारे टूट गये हैं, कितने बांध ढह गये हैं .... कितना हम एक दूसरे में खो गये हैं .. .. चौबीस घंटे पहले हमने इस कमरे में अजनबी की तरह प्रवेश किया था और चौबीस घंटे के बाद हम उसी कमरे से जीवन साथी (पति पत्नी नहीं) बनकर निकल रहे हैं - यह नये वर्ष का नव प्रभात है जिसका स्वागत करने को हम बाहर आए हैं।''[१]

''तेजी सरदार खजान सिंह की चौथी व अंतिम संतान थीं। वे स्वयं मातृविहीन रही हैं। इस अभाव व पीड़ा में उन्होंने अपने अन्दर एक सुकुमार मातृ हृदय विकसित किया है। बच्चन ने भावगत सौंदर्य को व्यक्त करते हुए कहा - १ जनवरी १६४२ का दिन याद करता हूँ कि जब तेजी मेरे जीवन में आई तब वह पहली नारी थी जिनमें देवी की दिव्यता, माँ की ममता, सहचरी की सदभावना और प्राणाधार की प्राण दायिनी धारा का मैंने एक साथ अनुभव किया और मुझे प्राप्त हुई थी न मेरी खोज से न मेरी साधना से, ने मेरे अधिकारी होने से बल्कि दैव के रहस्य पूर्ण विधान से।''[२]

तेजी को विद्यार्थीकाल से ही अभिनय का शौक था, जिसे उन्होने निरन्तर जारी रखा। बच्चन ने उनका साथ दिया और इस प्रकार एक सुखद दाम्पत्य जीवन का प्रारम्भ हुआ जिसे बच्चन ने बखूबी अद्योपान्त सौंदर्यग्राही शैली में 'नीड़ का निर्माण फिर' आत्मकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

---

१ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - २३७
२ 'नीड़ का निर्माण फिर' पृ०सं० - २५१

(स) बसेरे से दूर

'बसेरे से दूर' कृति उन यादों को समेटे हुए है, जब वह नीड़ का निर्माण कर अपने बसेरे से दूर देश लंदन पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त करने हेतु पहुंचे। वहाँ रहकर उन्होंने वहाँ के रमणीक स्थलों एवं देश व परिवार से दूर रहकर अपनी मनः स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया है। पूरा उपन्यास सौंदर्य से ओत प्रोत है। बच्चन ने परिवार की आर्थिक विपन्नता के रहते विद्यार्थी जीवन में ही अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। अध्यापन कार्य के दौरान अनेक इष्ट मित्र उनके जीवन में आये जिनका जिक्र बच्चन ने 'बसेरे से दूर' कृति में किया है। बच्चन जिस समय युनिवर्सिटी में आफिसर्स ट्रेनिंग कोर के लेफ्टिनेंट थे भवानी शंकर उनके वरिष्ठ सहयोगी थे वे कैप्टिन थे। शिष्टता से पीते थे कविता प्रेमी थे। वे बच्चन से बहुत प्रभावित थे। पन्त उनके मित्रों में से थे। कई करणों से वे बच्चन से बहुत निकट से जुड़े थे। उनके व्यक्तित्व के विषय में बच्चन ने खुले मन से लिखा है - ''भवानी शंकर' की याद आते ही उनका लम्बा कद आंखों के सामने आ जाता है। उनको किसी भी माप दण्ड से सुन्दर ही कहा जा सकता था - कपड़ों में हमेशा टिपटाप शेरवानी के साथ चूड़ीदार पजामा और अंग्रेजी शूट दोनों ही उनपर फबते थे - अभिजात्यों के खेल गोल्फ खेलने के शौकीन थे। उनमें एक और चीज थी यौनाकर्षण, जिसे अंग्रेजी में 'सेक्स अपील' कहते हैं और उसके प्रति वे स्वयं सचेत थे। यौन विज्ञान के थोड़े बहुत अध्ययन से मैंने जाना है कि सेक्स अपील रखने वाला आदमी बुद्धि में कुशाग्र, व्यवहार में शालीन, वृत्ति में बहिर्मुखी, सुरुचि सम्पन्न, उदार और तबियत दार होता है। ये सारे गुण भवानी शंकर में थे। वे दक्ष अध्यापक थे - कविवर नरेन्द्र शर्मा उनके विद्यार्थी रह चुके थे, बाद में उनके निकटस्थ मित्र। आधुनिक अंग्रेजी कवियों पर उन्होंने एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी थी।'' [१]

अन्तजार्तीय विवाह करने के कारण बच्चन लगभग अपने सभी परिवारी जनों से दूर हो चुके थे, किन्तु जीवन के झंझावातों से टकराते, अथक परिश्रम के साथ वे अपनी जीवन यात्रा की नाव बखूबी खे रहे थे। अमिताभ, अजिताभ उनके दो पुत्र, शेष उनके परिवार से जुड़े मित्र। उन्होंने अपने परिवार के विषय में लिखा है -

''पर हमारा माँ बाप बेटों का छोटा सा परिवार एक ऐसा सुगठित नीड़ था, जिसे न किसी की अपेक्षा थी, न किसी से भय। युनिवर्सिटी के काम से बचे समय में मैं अपने बच्चों को

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-२६

पढ़ाता हूँ या उनके साथ खेलता हूँ। राजन को पढ़ाने से छुट्टी मिल गई है। उन्होंने बी०ए० कर लिया है और कानून पढ़ रहे हैं। स्वान्तः सुखाय स्वाध्याय करता हूँ यथाप्रेरणा कविता लिखता हूँ, काव्य आन्दोलनों में रुचि नहीं रखता, उनमें भाग नहीं लेता। ऐसे नियमित और व्यावहारिक जीवन में क्या बुरा है कि उसमें किसी प्रकार का व्यवधान चाहूँ ?" [1]

उनके जीवन से जुड़े इस प्रकार से प्रसंगों को पढ़ने से पाठक को जो रसानुभूति होती है, यही सौंदर्यानुभूति का मूल है।

बच्चन जी पी-एच०डी० के लिये लंदन जाने को तैयार हुए। उस समय तेजी बच्चन मुंबई हवाई अड्डे पर उनको छोड़ने गईं। बच्चन मुंबई में लाला कैलाशपत सिंहानिया के अवास जे०के० हाउस में ठहरे थे। बच्चन का परिचय उनसे जमुना प्रसाद सिंह के माध्यम से हुआ था। श्री जमुना प्रसाद सिंह इलाहाबाद युनिवर्सिटी के छात्र थे। म्योर होस्टिल में रहते थे। उनके विषय में बच्चन ने लिखा है -

"तन से लहीम-शहीम, बुद्धि से विलक्षण, पान, मधुपान, रसपान - तीनों के सम शौकीन - रस की रेंज अधर-सुधा-रस से काव्य-कला-रस तक फैली। वे मेरी कविता के प्रेमी थे, इन्कम टैक्स विभाग में किसी ऊँचे पद पर थे। जहाँ कहीं उनकी पोस्टिंग होती, वे कवि सम्मेलन कराते और मुझे निमंत्रित करते। एक साल जब वे मुंबई में थे, उन्होंने जे०के० हाउस में कवि सम्मलेन कराया था और मुझे बुलाया था। तभी से मैं लाला कैलाश के सम्पर्क में आया था।" [२]

तेजी बच्चन ठीक समय पर हवाई अड्डे बच्चन के साथ पहुँची। विदाई के उन क्षणों की बच्चन ने सौंदर्यमय अभिव्यक्ति की है -

"अब एक को विदा होना था।
अब एक को विदा देनी थी -
यह विदा का नाम ही होता बुरा है,
डूबने लगती तबियत।" [३]

लन्दन पहुँच कर बच्चन ने वहाँ के नैसर्गिक सौंदर्य का भरपूर आनन्द लिया। लगभग तीन दिन के पश्चात् वे कैंब्रिज युनिवर्सिटी पहुँचे। कैंब्रिज लंदन से १० मील दूर उत्तर में

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-३१
१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-४२
१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-४२

था। उनहोंने कैंब्रिज का जो चित्र पाठकों से सामने प्रस्तुत किया है, उससे पाठकों को परम आनन्द की अनुभूति होती है। यही आनन्द सौंदर्यानुभूति है। बच्चन के शब्दों में -

"दो डेढ़ मील की लम्बाई, चौड़ाई की प्रायः समतल भूमि पर बसे कैंब्रिज ने मुझे प्रथम सम्पर्क में मोह लिया। यों तो सारा कैंब्रिज ही स्वच्छ और सुन्दर है, पर मंद-मंद बहती बड़ी नहर सी कैम नदी के किनारे-किनारे सदियों पुराने कालिजों की इमारतों के सिलसिले, उन्हें दूसरे किनारे से जोड़ने वाले विभिन्न आकार प्रकार के कई पुल- जिनमें से एक सफेद संगमरमर का है, एक काली लकड़ी का - नदी पर तैरती रंग बिरंगी बतखें और शंख-श्वेत हंसों के जोड़े, लग्गी से खेयी जाती छोटी नाव जिन्हें 'पंट' कहते हैं उस पार झुकी शाखाओं से पानी की सतह को सहलाने वाले विलो वृक्षों की कतारें, उनके पीछे सुनहरे डेफोडिल के खेत और उनकी पृष्ठभूमि में झाड़ियों का हरियाला फैलाव - सब मिलकर एक ऐसा शान्त स्वप्निल चित्र प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें देखते आंखे नहीं अघातीं। और अगर कैंब्रिज का थोड़ा सा इतिहास ज्ञात हो तो स्मृति पटल पर उभरती हैं - उन प्रतिभावानों की आकृतियां जो कैंब्रिज में विचरीं, जिन्होंने कैंब्रिज से प्रेरणा ली जो कैंब्रिज में पनपीं, फूलीं और जिनके अवदान से विज्ञान और साहित्य समृद्ध हुए, सभ्यता और संस्कृति ने प्रगति की।" [१]

बच्चन ने अपने शोध कार्य के साथ -साथ काव्य लेखन को जारी रखा। कैंब्रिज प्रवास में उन्होंने १०० से ऊपर कविताऐं लिखीं। उनकी रचनाऐं धनोपार्जन का साधन भी बनीं क्योंकि शोध कार्य के दौरान आर्थिक समस्या का आना स्वाभाविक था। यद्यपि कैंब्रिज अपने नैसर्गिक सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध था, तथापि विद्यार्थी काल मे परिवारी जनों से दूर रहते हुए बच्चन का मन उदास हो जाता था। उदासी के उन क्षणों में उनकी कविता कल्पना की यात्रायें उन्हें उदासी से निजात दिलाने में सहायक सिद्ध हुईं -

हर रात तुम्हारे पास चला आता हूँ।
जब घन अंधियारा तारों से ढल धरती पर
आ जाता है,
जब दर परदा दीवारों पर भी नींद नशा
छा जाता है,
तब यन्त्र सदृश अपने विस्तर से हो बाहर

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-४५

चुपके - चुपके

हर रात तुम्हारे पास चला आता हूँ।

समतल भूतल वत्ती की पांतो के पहरे,

में सुप्त नगर

अम्बर को दर्पण दिखलाते, सरवर सागर,

मधुवन, बंजर

हिम तरु मंडित, नंगी पर्वत-माला, मरुथल,

जंगल दलदल

सबकी दुर्गमता के ऊपर मुसकाता हूँ।

हर रात तुम्हारे पास चला आता हूँ। [1]

शोध कार्य की पूर्णता के लिये बच्चन को आयरलैण्ड जाना पड़ा। आयरलैण्ड में लिखित कार्य के साथ-साथ विभिन्न वर्गों के लोगों से मिलना, नगर, कस्बे, गांव, शिक्षा-संस्थान, हाट-बाजार, क्लब, गिरजाघर, मेला इत्यादि में। आइरिश की एक अपनी विशेषता है जो उसे औरों से अलग करती है। उसे समझे बिना ईट्स को नहीं समझा जा सकता। आयरलैण्ड की यात्रा का बच्चन के मनोमस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। बच्चन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है। -

"क्षितिज से निरभ्र आकाश में उठते हुए सूर्य प्रकाश में डबलिन को देखकर मुझे ऐसा लगा जैसे आँखों पर हरा चश्मा लगाकर वहाँ उतर पड़ा हूँ - चारों ओर हरियाली ही हरियाली। हरी भरी भूमि, हरे पेड़-पौधों की सघनता की प्रत्याशा तो मैं करता हुआ आया ही था - इसी कारण तो आयरलैण्ड को 'एमरल्ड आयरलैण्ड' कहते हैं - मरकत द्वीप। पर मैं यह नहीं जानता था कि यहाँ मनुष्य ने प्रकृति की हरियाली से होड़ लगाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।" [2]

डबलिन पहुँचकर बच्चन श्रीमती ईट्स से मिले। वे बड़ी ममतामयी थीं। अपने पति के जीवन और काव्य में रुचि लेने वालों को बड़े स्नेह और आदर की दृष्टि से देखती थीं। ईट्स की एक-एक चीज के साथ उनकी स्मृतियाँ जुड़ी थीं। उन्होंने बच्चन को एक सोने की अंगूठी भेंट की। उसको भेंट करते समय श्रीमती ईट्स के जो भाव थे उनसे भावगत सौदर्य के दर्शन होते है। बच्चन ने लिखा -

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-७८
२ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-८७

"अंगूठी के ऊपर बाज और तितली की शक्ल बनी हुई थी - बाज सीधे झपटने वाला, तितली गोल गोल घूमने वाली। यह अंगूठी ईट्स ने खुद डिजाइन की थी और अपनी छिगुनी उंगली में हमेशा पहने रहते थे - जैसे उन्हें याद दिलाने को कि वे बाज भी हैं और तितली भी दर्शनिक भी, कवि भी। मिसेज ईट्स ने मेरी छिगुनी उंगली पकड़ी और अंगूठी उस पर खिसका दी, जब वह ठीक फिट हो गई तो गौर से उसकी ओर देखकर बड़े स्मृति-करुण स्वर में बोली, "बिली की उंगली ठीक तुम्हारी जैसी थीं।" मैं किन भावों में डूब गया, मैं कह नहीं सकता, जैसे उस अंगूठी की किसी जादुई शक्ति ने मुझे छू लिया।" [१]

बच्चन पूरे सप्ताह शोध कार्य में व्यस्त रहते। सातवें दिन आयरलैण्ड के मनोरम दृश्यों को देखने निकल जाते थे। अपनी स्मृतियों के माध्यम से उन्होंने आयरलैण्ड के सौंदर्य का इतना अधिक वर्णन अपनी आत्मकथा में किया है कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि आयरलैण्ड के सौंदर्य का यदि क्रमवार विस्तार से वर्णन किया जाय तो निश्चय ही एक गाइड बुक तैयार हो जायेगी। उनकी अधोप्रस्तुत पंक्तियों में पीड़ाच्छन्न सौन्दर्यानुभूति का साक्षात्कार होता है -

"सूर्यास्त हो गया है, पर संध्या के नारंगी रंग के बादलों में अभी समुद्री क्षितिज आलोकित है, पीछे निचली बंजर पहाड़ी पर एक छोटा सा पत्थर का काटेज है, खस्ता हालत में, शायद बहुत दिनों से इसमें कोई रहता नहीं, कौन आया होगा, कभी एकाकी इस सूनसान में रहने को। पहाड़ की तराई से लगी सड़क पर आकर हमारी टूरिस्ट बस रुकी है और सब लोग उतर कर सहसा चुप क्यों खड़े हैं। यहां का उदास सौंदर्य चुपचाप निश्चल होकर ही देखा जा सकता है-

सिन्धु का छिछला-छिछला तीर,
अकंपित, नीर मुकुर सा नीर।
यहां लगता है कोई छोड़
गया है मन की गहरी पीर। [२]

केंब्रिज लौटने से पूर्व बच्चन किलार्नी के प्राकृतिक सौंदर्य को देखने गये, जिसकी तुलना कश्मीर तथा ताजमहल जैसे मनोरम स्थलों से ही जाती है। किलार्नी बच्चन के स्मृति पटल पर कश्मीर घाटी का अपार सौंदर्य सहसा आंखों के सामने फट पड़ता है। किलार्नी देखकर बच्चन को कुछ ऐसी ही अनुभूति हुई -

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०- ६३
२ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-६६

"पहाड़ियां, नदी, झील, झरना, वन, उद्यान, नहरें, पुराने खण्डहर, नये निर्माण, इतिहास, विज्ञान, प्रकृति, मानवी कौशल – सबका कैसा यथा स्थान समायोजन, सम्मिलन यहाँ किया गया था।" [१]

बच्चन के डिग में, किसी पास के ही कस्बे की लड़की नैनसी रहती थी, जो किसी लाइब्रेरी में काम करती थी। वह बच्चन के साथ किलार्नी की यात्रा में थी। वह किलार्नी के सौंदर्य में डूब गई। वहाँ दोनों ने नैसार्गिक सौंदर्य का भरपूर आनन्द लिया। अगली सुबह जब दोनों बस द्वारा डबलिन वापिस लौट रहे थे तो मार्ग में सुनहरी यादों के बीच बच्चन ने एक गीत गुनगुनाना शुरू किया। डिग में आकर बच्चन ने उस कविता के मूर्त रूप दिया, जिसे पढ़कर सौंदर्यानुभूति के दर्शन होते हैं –

तुम्हारे नील झील से नैन
नीर निर्झर से लहरे केश।

तुम्हारे तन का रेखाकार
वही कमनीय कलामय हाथ
कि जिसने रुचिर तुम्हारा केश
रचा गिरि ताल माल के साथ

करों में लतरों था लचकाव,
करतलों में फूलों का वास,
तुम्हारे नील झील से नैन,
नीर निर्झर से लहरे केश।

मुझे यह मिट्टी अपनी जान
किसी दिन कर लेगी लयमान,
तुम्हें भी कलि कुसुमों के बीच
न कोई पायेगा पहचान।

मगर तब भी यह मेरे छन्द
कि जिसमें एक हुआ है अंग
तुम्हारा और मेरा अनुराग
रहेगा गाता मेरा देश।

तुम्हारे नील झील से नैन
नील निर्झर से लहरे केश। [२]

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-१०५
२ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-१०७

बच्चन की थीसिस पूरी हो चुकी थी। अब स्वदेश लौटने की तैयारी। बच्चन के मन में उथल पुथल होती है। तेजी बच्चन के पत्रों से उन्हें लगा कि बाइस महीने उन्होंने धीरज हिम्मत से काटे अब शायद वह टूट रही है। अतः बच्चन अपनी कविता व पत्र के माध्यम से उन्हे धीरज बंधाते थे। तेजी को लिखे पत्र में जो पंक्तियां बच्चन ने लिखी थीं वे सौंदर्यानुभूति से ओत प्रोत हैं-

बीच खड़ी है हम दोनों के
अब न जाने कितनी रातें,
अभी बहुत दिन करनी होगी
केवल इन गीतों में बातें
कितने रंजित प्रात, उदासी
में डूबी कितनी संध्याएं,
सबके बीच पिरोना होगा,
प्रिय हमको धीरज का धागा।
याद तुम्हारी लेकर सोया,
याद तुम्हारी लेकर जागा। [१]

दीक्षान्त समारोह के पश्चात् बच्चन ने स्वदेश लौटने से पूर्व अमिताभ, अजिताभ व राजन के लिये जेब खर्च से बची राशि से कुछ उपहार खरीदे। वे बहुत कुछ ले जाना चाहते थे। पैसे की कमी बच्चन को रह रह कर साल रही थी। उनकी मनोदशा का बहुत ही अच्छा चित्रण है-

"मन में बड़ा मलाल है कि इतने दिनों बाद लौट रहा हूँ और बच्चों के लिये कुछ नहीं लिये जा रहा हूँ। बाबा ने मेरी वेदना देखी और मुझे दस पौंड दे दिये। मैंने अमित के लिये एक छर्रे वाली बन्दूक ली। उसकी बाढ़ देखकर हम पहले सोचा करते थे कि वह फौज में जायेगा, हम उसे कभी-कभी फील्ड मार्शल अमिताभ कहकर पुकारते भी थे। बंटी के लिये मैंने बिजली से चलने वाली रेलगाड़ी ली। सोचा तेजी पूछेगीं, - "मेरे लिये क्या लाये ?" तो कहूंगा - तुम्हारे लिये तो खुद आ गया - वही उत्तर जो मैं किसी समय श्यामा को लौटने पर देता था। न उनके लिये कुछ लिया, न अपने लिये, राजन के लिये एक टाई जरूर ले ली अपने स्नेह बन्धन के प्रतीक रूप। पांच पौंड बचाकर अपने पास रख लिये, नकद इतना ही अधिकतम समुद्री यात्रा में साथ ले जा सकता था।" [२]

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-११७
२ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-१२०

इस प्रकार उपरोक्त पंक्तियां पढ़ने से प्रणयधर्मी वियोग श्रृंगार के माध्यम से सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति परिदृष्ट होती है। बच्चन विदेश की यात्रा कर अब अपने आवास इलाहाबाद में आ गये। स्टेशन पर दोनों बेटे, कुछ इष्ट मित्रों के साथ तेजी बच्चन पहुंची। तेजी के बदन पर फूलों के गहने देख कर बच्चन ने आर्थिक विपन्नता का अहसास स्टेशन पर ही कर लिया था। घर पहुंचने पर विस्तार से जब ज्ञात हुआ कि उनकी पुस्तकों की रायल्टी भी विधिवत नहीं मिलती थी। बस किसी प्रकार घर का खर्च भर चलता था। बच्चन कुछ कविताऐं पत्र पत्रिकाओं में छपने के लिये विदेश से भेजते रहते थे। उनसे हुई आय न के बराबर थी। ऐसी स्थिति में तेजी की कर्त्तव्यपरायणता काम आई। उन्होंने अपने सभी गहनें आवश्यकतानुसार बेंच डाले। बच्चन आत्मकथा में अपनी वेदना, तेजी का परिवार के लिये त्याग की भावना को व्यक्त किये बिना नहीं रहे -

''भारतीय नारी आभूषणों को बड़े चाव से बनवाती, पहनती और प्राण-पण से उनकी रक्षा करती है, पर जब उसके या उसके परिवार के मान, मर्यादा का सवाल उठता है तो वह उतने ही विरक्त भाव से उन्हें अपने बदन से उतार कर अलग कर देती है। हमारे परदादा नायब साहब के बाद, दुर्भाग्यवश, हमारे परिवार की कोई पीढ़ी ऐसी न गई जिसके मान, मर्यादा को किसी न किसी संकट ने चुनौती न दी हो और इन चुनौतियों का सामना कर मेरी दादी, मेरी माँ, मेरी पूर्व पत्नी श्यामा ने खानदान की इज्जत बचाई थी, तेजी ने वही परम्परा निभाई।'' [१]

वस्तुतः तेजी बच्चन के आभूषण मोह से विरत होकर बच्चन की आर्थिक सहायता करना भारतीय नारी के आचरणपरक सौन्दर्य का उत्तम उदाहरण है। बच्चन ने जो भी तेजी बच्चन के विषय में लिखा वह स्पष्ट करता है कि तेजी बच्चन ने अपने परिवार को उच्च्य श्रेणी में रखने के लिये अहं भूमिका निभाई और उन्हीं के कारण उनके पुत्र अमिताभ व स्वयं बच्चन पहुँच सके हैं। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विषय में बच्चन ने जहाँ भी अपनी आत्मकथा में वर्णन किया है, उनके विचार सौंदर्यबोध से युक्त हैं। एक स्थान पर बच्चन ने लिखा है -

''पति पत्नी में भी थोड़ी औपचारिकता, थोड़ा शिष्टाचार शोभन होता है - तुमने जो साहस दिखाया, सहयोग किया, उसी से मेरा यज्ञ पूरा हुआ।'' [२]

''और अंत में मेरे स्मृति पटल पर उतरते हैं कुंडू बाग, बैंक रोड, स्ट्रिची रोड, एडेल्फी और १७ क्लाइव रोड के बंगले, तेजी के मधुर मनोरम, मनस्वी, तेजस्वी, सान्निध्य में, जो

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०- १४३
२ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०- १८४

अपने आप यह आश्वासन है कि कैसी भी परिस्थिति आयें, कैसा भी परिवर्तन, वह उसे मनोनुकूल बनाने की क्षमता रखती है।" [1]

सम्पूर्ण 'आत्मकथा' पढ़ने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहंचते है कि पाठक उनका यह उपन्यास प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पढ़ते हुए आनन्दानुभूति से सराबोर हो जाते हैं। उनका व्यक्तित्व खुली पुस्तक के समान हमारे सामने आता है जिसमें सौंदर्यानुभूति की पराकाष्ठा के दर्शन होते है।

---

१ 'बसेरे से दूर' पृ०सं०-१६६

(द) दश द्वार से सोपान तक

बच्चन की बहुप्रशंसित आत्मकथा का यह चतुर्थ खण्ड 'दश द्वार से सोपान तक' एक सशक्त महाकाव्य है, जो उनके जीवन और कविता की अन्तर्धारा का वृतान्त ही नहीं बल्कि छायावादी युग के बाद के साहित्यिक परिदृश्य का विवेचन भी है। निस्संदेह, यह आत्मकथा हिन्दी साहित्य के सफर में मील का पत्थर है। बच्चन को इस आत्मकथा के लिये भारतीय साहित्य के सर्वोच्च पुरस्कार 'सरस्वती सम्मान' से सम्मानित भी किया गया।

बच्चन की यह कृति बेटों, बहुओं, पोते, पोतियों के भरे पूरे परिवार को समर्पित है। उन्होंने परिवार से पल-पल दूर रहने का दंश अनुभव करते हुए यह स्मृति यात्रा पूरी की। सम्पूर्ण कृति वर्णनात्मक शैली में है। उन्होंने इस कृति में जीवन के झंझावातों से गुजरते हुए, आशा निराशा के झूले में झूलते हुए, यदाकदा सौंदर्यमयी छटा बिखेरते हुए अपनी जीवन यात्रा के संस्मरण प्रस्तुत किये हैं।

बच्चन को दिल्ली के विदेश मंत्रालय से एक नियुक्ति पत्र मिलता है, जिसके तहत उन्हें विदेश मन्त्रालय में उत्तरोत्तर हिन्दी के प्रयोग में सहायता करना था। यह एक सुखद स्वप्न था। दिल्ली में रहकर एक नये जीवन की शुरूआत। प्रारम्भिक दिनों में बच्चन मेजर अविनाश चन्द्र के यहाँ ठहरे थे जिनसे बच्चन का परिचय तेजी के धर्म बन्धु के द्वारा कराया गया था। मन्त्रालय पहुंचकर उन्होंने अपना कार्य समझा। उनके मन में द्वन्द्वात्मक स्थिति बनी हुई थी कि जिस कार्य के लिये बच्चन को नियुक्त किया गया है वह उनकी डाक्टरेट डिग्री से बिल्कुल अलग हट कर था फिर भी उन्होंने अपने मन को समझाते हुए कहा -

"प्रतिकूल परिस्थितियों में क्या काम नहीं किया जा सकता ? मैंने अपने आदर्शवादी को जगाया, बच्चन जी जब आपने कोई काम करना चाहा है, कठिन-से-कठिन । तब आपने अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा कब की है ? आपने ही तो लिखा था -

हैं लिखे मधुगीत मैंने
हो खड़े जीवन समर में।

तो क्या यहाँ सृजन से कहीं सरल, अनुवादों का काम आपसे सचिवालयी शोर-गुल के बीच न हो सकेगा ? कल से आइए और काम शुरू कीजिए। टेढ़े आंगन की शिकायत नाच न जानने वाले करते है।" [1]

---

१ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-२५

वास्तव में उक्त पंक्तियों के माध्यम से उनके जुझारू व्यक्तित्व की बात सामने आती है और हमें भावगत सौंदर्य के दर्शन होते हैं। दिल्ली में बच्चन का सम्पर्क एक पंजाबी परिवार से हुआ जो सम्भवतः देश-विभाजन के समय सरहदी सूबे से शरणार्थी के रूप में दिल्ली आया था। उस परिवार में सबसे आकर्षक व्यक्तित्व माता जी का था। माता जी के व्यक्तित्व ने बच्चन को अत्यधिक प्रभावित किया। बच्चन ने उनके शारीरिक सौष्ठव के विषय में लिखा है -

"गोरी, काले घने बालों की, मझोले कद की, शरीर से भरी, पर मोटी किसी माने में नहीं। बोली में सुस्पष्टता के साथ मिठास और आंखों में मुलामियत जो किसी गहरे दुःख को संयत होकर झेलने से आती है, होठों पर दबी-दबी सी मुस्कान जो मानों कह रही हो कि उल्लास के आधार तो खिसक गये 'पर अथिरता पर समय की मुस्कराना कब मना है', और जो शायद इसलिये भी आरोपित की गई हो कि उनके बच्चे आश्वस्त रहें कि बहुत कुद बिगड़ा हो, पर सब कुछ नहीं बिगड़ा है और वे अच्छे आने वाले दिनों की उम्मीद लगाये हुए जीवन में आगे बढ़ें।" [१]

बच्चन ने आगे लिखा है -

"जिसमें जीवन का अवसाद एक पावन गरिमा में रूपान्तरित हो गया था। उन्हें देखकर मुझे 'निराला' जी की 'भारत की विधवा' शीर्षक कविता की याद आ जाती थी -

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन,
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन--
दलित भारत की ही विधवा है।"

पर वह विधवा जो सन्तान के उज्ज्वल भविष्य का दृढ़ विश्वास अपने रोम रोम में बसाए हो।" [२]

कुछ समय के पश्चात् तेजी बच्चन को भी परिवार सहित दिल्ली में ही आकर व्यवस्थित होना था। उन्होंने अपने कार्यक्रमानुसार दिल्ली आने के लिये समस्त घरेलू सामान बांधा। जब कोई पुराना स्थान वहां की वस्तुऐं वहां के लोग अपने से अलग होते हैं, तो हर्ष और विषाद का मिला जुला एहसास व्यक्ति को होने लगता है। एक ओर नये स्थान पर पहुंचकर नव जीवन की शुरूआत, दूसरी ओर पुराना छोड़ने पर विषाद कुछ-ऐसा ही बच्चन ने महसूस किया। उन्होंने लिखा है-

---

१ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-३६
२ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-३६

"घर खाली-खाली सा लगा, जैसे कुछ उदास भी, मानों कह रहा हो 'मुझे इतनी निर्ममता से छोड़े जा रहे हो, मैं तुम सब लोगों को बहुत याद करूंगा। आठ बरस का साथ कम नहीं होता। तुम्हारी पत्नी ने मुझे संवारा, तुम्हारे बच्चों ने मुझे अपने हासोल्लास से गुंजाया, तुमने अपने स्वाध्याय-सृजन श्रम से मुझे संस्कारा। हर हालत में शालीनता, सौम्यता, गरिमा का वातावरण, भीतर बाहर बनाए हुए। पता नहीं यहाँ अब कौन आयेगा .... ।"[१]

बच्चन ने दिन भर बैंक, मकान किराया एवं अन्य शेष कार्य निपटाये। अमित तथा अजित विदा लेने पड़ोस में अपने मित्रों के पास गये। बच्चन जब घर लौटे तो तेजी को घर के बरामदे में बैठा हुआ पाया। उनकी वेदना को बच्चन ने भावगत सौंदर्य के साथ प्रस्तुत किया है -

"घर एक दम शांत था, संध्या ढल चली थी और तेजी बरामदे में कुर्सी पर चुपचाप बैठीं सामने खिली गुलाबों की कतारों को अपलक देख रही थीं। नजदीक गया तो देखा, उनकी आंखों में मोटे-मोटे आंसू ढुलक रहे थे। तेजी को गुलाबों से बहुत प्रेम था। उन्होंने कहां कहां से मंगा, चुन-चुन कर अच्छे गुलाबों की सौ किस्में सामने की क्यारियों में लगवाईं थीं। सुबह कुछ फूलों को काटकर गुलदानों में लगाना - कलापूर्ण ढंग से सजाना - उनका नित्य नैमित्तिक काम था। कुछ दिनों से उन्होंने फूलों को तोड़ना बन्द कर दिया था। फूलों को जैसे पता लग गया था कि उनका शैदा अब यहां से विदा होने वाला है और उन्होंने दिलखोल कर अपना सारा आन्तरिक सौंदर्य बाहर उड़ेल दिया था। उस संध्या को गुलाब की क्यारियां अपने पूरे यौवन पर थीं - जाड़े से अस्तंगमित सूर्य की सुनहरी सिन्दूरी किरणों से झीनी झीनी आलोकित .... ।"[२]

बच्चन ने तेजी बच्चन की आंखों में जो आंसू देखे उनमें दिल्ली जाने की खुशी भी झलक रही थी और इलाहाबाद छोड़ने का रंज भी। फूलों के माध्यम से बच्चन ने उनकी मनोदशा की सटीक व्याख्या की है -

"फूलों में उनका पिछला चौदह वर्षीय इलाहाबादी जीवन झलक रहा था। फूलों में कितनी कोमल पंखुड़ियां थी -

कितने रूपों की कितने रंगों की,
कितने रसों की कितनी गंधों की।
कितने तीखे कांटे थे -

---

१ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-४७
२ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-५०

कितने आकार के,

कितनी धार के,

कितनी मार के,

कितने चीत्कार के,

फूलों में उनका आगामी अनजाना जीवन था,

उसकी संशवनायें थीं,

उसकी आशंकाऐं थी।

फूलों में परिचित से विदा भी थी,

(अपरिचित का स्वागत भी था)

विगत की स्मृतियां भी थीं,

अनागत के सपने भी थे,

और कुछ परस्पर विरोधी स्थितियों मनः स्थितियों के बीच एक पतली रेखा पर प्रकंपित, अज्ञेय, अपरिभाषेय भी।" [१]

दिल्ली में बच्चन का परिवार के साथ नेहरू परिवार में आना-जाना प्रायः होता रहता था। दोनों परिवार आपस में बहुत घुले मिले थे। नेहरू परिवार से तेजी बच्चन व बच्चन के पुराने सम्बन्ध थे, जब वे इलाहाबाद में रहते थे। दिल्ली आने पर इन सम्बन्धों में अधिक निकटता आयी। पं० जवाहर लाल नेहरू देश के प्रथम प्रधान मंत्री थे। उनके जन्म दिवस पर उनके आवास पर प्रतिवर्ष सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित होते थे। एक वर्ष आकाश वाणी द्वारा बच्चन के निर्देशन में सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन रखा गया जिसमें विभिन्न प्रान्तों के बच्चों ने भाग लिया। इस अवसर पर बच्चन ने एक गीत बच्चों के लिये तैयार किया जो सौंदर्य भावना से ओत-प्रोत है -

हम हिमगिरि की ऊँचाई लाए,

हम सागर की गहराई,

हम पूरब से आए, लाए

प्रात किरण की अरुणाई।

हम पश्चिम से आए, लाए

आग-राग राजस्थानी,

---

१ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-५१

हम लाये गंग-जमुन के

संगम का निर्मल पानी।

कल आनेवाली दुनिया में

हम कुछ कर दिखलायेंगे,

भारत के ऊँचे माथे को

ऊँचा और उठायेंगे।

भारत के कोने-कोने से हम सब बच्चे आए हैं,

नई उमंगों, आशाओं का हम संदेश लाए हैं। [१]

बच्चन ने विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए अपनी जीवन यात्रा जारी रखी। तेजी बच्चन अस्वस्थता के दौर से गुजर रही थीं। उन्हें देख बच्चन की चिन्ता बढ़ जाती है, किन्तु तेजी के मन में आशा का दीप जल रहा है। वे बच्चन को आश्वस्त करती हैं कि सब ठीक हो जायेगा। हमें अंधेरों से निकलने का प्रयास दृढ़तापूर्वक करना चाहिए। हम अकेले नहीं हैं। बच्चन को तेजी का सहारा मिला और उन्होंने निम्न रचना को शब्द दे डाले जो सौंदर्यानुभूति का दर्शन कराते हैं -

है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है ?

कल्पना के हाथ से कमनीय जो मंदिर बना था,

भावना के हाथ ने जिसमें वितानों को तना था

स्वप्न ने अपने करों से था जिसे रुचि से संवारा,

स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों से, रसों से जो सना था,

ढह गया वह तो जुटा कर ईंट, पत्थर, कंकड़ों को

एक अपनी शान्ति की कुटिया बनाना कब मना है ?

है अंधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है ? [२]

उपर्युक्त पंक्तियों के माध्यम से बच्चन के हृदय का सृजनधर्मी आशापूर्ण सौन्दर्य-बोध अपनी पूरी छटा के साथ विद्यमान है।

बच्चन ने 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में एक प्रसंग की चर्चा की थी कि वे अपनी दिवंगता पत्नी श्यामा को 'ज्वाय' पुकराते थे और श्यामा बच्चन को 'सफरिंग' पुकराती थी। तब से

---

१ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-१२७

२ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-३७१

लम्बे समय तक जितनी लड़कियां उनके जीवन में आयीं, सभी ने श्यामा की दुहाई दी, किन्तु इस नाम से किसी ने सम्बोधित नहीं किया। लगभग ४० वर्ष की आयु के बाद बच्चन को किसी ने 'हैलो सफरिंग' कह कर पुकारा। अनायास बच्चन के मुख से भी निकल गया 'हैलो ज्वाय' यह स्वर एक लड़की का था। उसने बताया कि वह बच्चन की श्यामा है और 'निशा निमन्त्रण' की प्रति पूर्व जन्म की श्यामा के नाम से मांगी। करवाचौथ का व्रत रखा। प्रसाद लेकर बच्चन से मिलने आई। बच्चन बड़े असमंजस में थे। उन्होंने 'सफरिंग' और 'ज्वाय' वाली बात किसी को नहीं बताई थी तो ४० वर्ष बाद उसे कैसे पता चली, कहीं सच में तो श्यामा का पुनर्जन्म नहीं ? कुछ भी हो वह बच्चन की दया का पात्र बनी। इसी ऊहा पोह में बच्चन ने कविता लिखी जो सौंदर्यानुभूति का प्रतिरूप है यह कविता 'असमंजस' शीर्षक से है। इसे बच्चन ने सन्दर्भ के साथ 'दश द्वार से सोपान तक' की आत्मकथा में दिया है -

रानी
तुम तो किसी जादुई सरोबर में
नहा कर
नयी होकर
नवयौवना होकर
फिर आ गई हो,
और मैं तुम्हें देख
चकित विभ्रमित
सोच नहीं पाता हूँ
कि तुम्हें कहाँ ठहराऊँ,
तुम्हें कहाँ बिठाऊँ,
कहाँ तुम्हारी से जेज सजाऊँ।
कहाँ तुम्हारा स्वागत सत्कार करूँ
कहाँ तुम्हें प्यार करूँ।
क्यों कि तुम्हारा पुराना रनिवास
जगह-जगह से टूटा गिरा,
दरका, धरा - धसका
खण्डहर हो गया है

अशोभन, दुर्दर्शन, डरावना,
और मैं कोई ऐसा शिल्पी नहीं जानता
जो अपनी जादुई शक्ति से
इन बिखरे ईंट पत्थरों को
जुटा सके,
इनमें जीवन डाले,
और इन्हें
एक ऐसे रंग महल का रूप दे
जो तुम्हारी सुख निदिया के लिये
लोरी गा सके।[१]

बहुत दिनों तक वह लड़की पत्रों के माध्यम से, कभी प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा बच्चन के जीवन में पूर्व जन्म की श्यामा का एहसास कराती रही। बाद में उसके पिता द्वारा यह ज्ञात हुआ कि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त है अतः उससे किसी प्रकार का सम्पर्क न किया जाय। बच्चन ने यही अनुमान लगाया कि 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' कृति में श्यामा व चंपा की अनुभूतियों से तादात्य स्थापित कर समवय नवयुवक नवयुवतियां बच्चन से निकटता स्थापित करते होंगे। पूर्व और पश्चात् जन्म को जोड़ने वाली यदि कोई कड़ी हो सकती है तो वह है-स्मृति। शेष मनुष्य की सारी प्रकृति एवं प्रवृत्तियां विशेषताएं इसी जन्म की भौतिक परिस्थितियों एवं प्रभावों से व्याख्यायित की जा सक्ती हैं।

सन् १९७९ मे अमिताभ बच्चन की शूटिंग के सिलसिले में बच्चन सपरिवार दार्जलिंग पहुंचे। अमिताभ अक्सर अपनी शूटिंग पर देश, विदेश अपने माता-पिता व जया, श्वेता, अभिषेक को ले जाया करते थे। बच्चन ओबराय होटल में ठहरे हुए थे। उन्होंने सुबह के प्राकृतिक दृश्य का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है -

"पूरब से पश्चिम तक नीलम-नील आकाश के नीचे और पन्ना हरित धरती के ऊपर स्वर्ण-मेखला के समान हिम-गिरि-माला फैली हुई थी, अपने सर्वोच्च शिखर कंचनजंघा के साथ जो गौरी शंकर (एवरेस्ट सगरमाथा या सरगमाथा) के बाद संसार का सबसे ऊंचा पर्वत माना जाता है।"[२]

---

१ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-४०५
२ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-४३१

बच्चन ने दार्जलिंग के प्राकृतिक सौंदर्य के संदर्भ में कालिदास, सुमित्रा नन्दन पन्त, रामधारी सिंह दिनकर, शायर इकबाल, महोदवी वर्मा के उद्धरण दे डाले। उन्होने कहा –

"आकाशी शुभ्रता जैसे झुककर पर्वतीय सौंदर्य का मस्तक चूम रही है। मधुकाव्य लिखते समय मेरी कल्पना केवल यह देख सकी थी –

हिम श्रेणी अंगूर लता सी फैली हिम जल है हाला,
चंचल नदियां साकी बनकर, भरकर लहरों का प्याला,
कोमल फूल करों में अपने छलकाती निशि दिन चलतीं,
पीकर खेत खड़े लहराते, भारत पावन मधुशाला!" [१]

बच्चन ने प्रसंगानुसार अपनी कविताओं के बंद आत्मकथा में जोड़े हैं। बच्चन ने अपने पुत्र अमिताभ की अभिनय-यात्रा के प्रसंगों की चर्चा विस्तार से की है। इस प्रकार १९८२ तक की घटनाओं का वर्णन करते हुए बच्चन ने इस कृति को विराम दिया है। सोपान का निर्माण हो चुका था।

---

१ 'दश द्वार से सोपान तक' पृ०सं०-४३३

(ii) निबन्ध में

(अ) नये पुराने झरोखें

सन् १६३२ से १६६१ की बीच उन्होंने अकाशवाणी अथवा पत्र पत्रिकाओं के लिये वार्तायें लिखी थी, जो नये पुराने झरोखे शीर्षक से निबन्ध संग्रह के रूप में प्रकाशित हुई है। बच्चन ने इस पुस्तक के लेखकीय उद्‌बोधन 'अपने पाठको से' में रहस्योंद्‌घाटन किया है कि वह पहले कवि नहीं लेखक ही बनना चाहते थे - ''अपने गद्य-लेखन के विषय में आपको कुछ रोचक बातें बताना चाहता हूँ। आज तो लोग मुझे प्रायः कवि के रूप में ही जानते हैं, पर एक समय मैं सोचता था कि मैं गद्य-लेखक ही बनूंगा और अपनी पहली रचना गद्य की ही प्रकाशित करना चाहता था। मुझे याद है कि अपने विद्यार्थी जीवन में मुझे हिन्दी निबन्धों पर अपनी कक्षा में सबसे अधिक नम्बर मिला करते थे।[१]

यदि सौन्दर्यानुभूति के साक्षात्कार की दृष्टि से विचार किया जाय तो इन निबन्धों में कथ्य और विमर्श का सौन्दर्य अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

इस कृति में 'कश्मीर यात्रा - एक संस्मरण' में प्राकृतिक दृश्यों के माध्यम से कवि की सौंदर्यानुभूति के दर्शन होते है। उदाहरणार्थ - ''खिलन मर्ग में मौसम बिल्कुल साफ था और नंगा पर्वत आसमान में अपना सिर ऊंचा उठाये हुए भव्य लगा। पहलगांव से चन्दनवाड़ी तक हम घोड़ों पर गये। चन्दनवाड़ी में बर्फ से पुल बन जाता है और पानी नीचे बहता है। अनन्तनाग में पानी का स्रोत है जहाँ से वितस्ता अथवा झेलम निकलती है। कश्मीर पहाड़ी प्रदेश है। कहीं बर्फ से ढकी चोटियां दिखाई पड़ती हैं, कहीं नीलम के जल की नदियां, झरने, बाग हैं तो फलों से लदे, बगीचे हैं तो फूलों से।''[२]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-६ - नये पुराने झरोखे - पृ०सं० १३१

१ बच्चन रचनावली भाग-६ - नये पुरोन झरोखे - पृ०सं० २६०

(ब) टूटी-छूटी कड़ियां -

सन् १६६३ से १६७३ के बीच बच्चन की गद्यात्मक रचनाधर्मिता 'टूटी-छूटी कड़ियां' के रूप में प्रकाशित हुई है। इस संग्रह के सम्बन्ध में बच्चन का अभिमत है -

"आज अपनी एक गद्य-कृति आपके सामने रख रहा हूँ। इसे विशुद्ध निबन्ध-संग्रह तो नहीं कह सकता। इसमें कुछ निबन्ध हैं, कुछ वार्तायें, कुछ भाषण, कुछ पत्र-परिचर्यायें, कुछ साक्षात्कार और संस्मरण हैं। पिछले दस वर्षों में लिखित विविध गद्य में जो कुछ मैंने अपनें पाठकों के लिये रूचिकर समझा है, उसे जोड़-बटोरकर इस संग्रह में रख दिया है। इस प्रकार इसका नाम 'टूटी-छूटी कड़ियां' शायद सार्थक समझाया जायेगा, जबकि कविता से विदा लेने के बाद मैं गद्य से भी छुट्टी लेने की तैयारी में हूँ।" [१]

इस संग्रह की गद्यात्मक विविधता के माध्यम से बच्चन ने वस्तुतः उस आत्मीय मुसाफिर की तरह, जो शीघ्र ही अपने देश जाने वाला हो - अपने विविध सरोकारों को गद्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। साजो-सामान को समेटने की इस बेला में भी उन्होंने अपनी ईमानदार अनुभूतियों और अभिज्ञाओं को प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। यद्यपि इसमें सौंदर्यानुभूति के लिये अलग से किसी सम्भावना का साक्षात्कार असुगम है, किन्तु सौंदर्य के प्रति सतत् समर्पित रचनाधर्मी कलमकार सौंदर्यानुभूति से सर्वथा शून्य कैसे हो सकता है -

"पुराना बाकू निश्चय ही रूमानी नगर था - हुस्नो-इश्क का, शेरो-शायरी का, कला-कारीगरी का, सुन्दर इमारतों का। पुराने महल मीनारों से प्रेमी प्रमिकाओं की अजीबो गरीब कहानियां जुड़ी हैं।" [२]

---

१ बच्चन रचनावली भाग-६ - टूटी-छूटी कड़ियां 'अपने पाठको से'

२ बच्चन रचनावली भाग-६ - पृ०सं० ३६७ - टूटी-छूटी कड़ियां की भूमिका

(iii) पत्र में

बच्चन के जीवन का विस्तृत धरातल है। उनसे उनके परिजनों, साहित्यिक मित्रों, गुरुजनों, श्रद्धेयजनों, परिचितों के अतिरिक्त ऐसे अनेक व्यक्ति थे जो उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में नहीं थे, किन्तु जिन्होंने उन्हें कवि सम्मेलनों में सुना था, उनकी कृतियों को पढ़ा था तथा उनके बारे में चर्चायें सुनी थी, इन लोगों ने समय-समय पर पत्र भी लिखे, जिनका बच्चन यथा शक्य उत्तर देने की भी चेष्टा करते थे, यद्यपि ऐसे पत्रों की संख्या अगणित है। उनके द्वारा लिखे गये समस्त पत्रों का संकलन सम्भव नहीं है तथापि डा० जीवन प्रकाश जोशी, निरंकार देव सेवक तथा डा० चन्द्र देव सिंह ने उनके पत्रों का न केवल संग्रह किया है; प्रत्युत उन्हें अधोप्रस्तुत शीर्षकों से प्रकाशित भी कराया है -

(क) बच्चन पत्रों में (संम्पादक - डा० जीवन प्रकाश जोशी)

(ख) बच्चन के पत्र (संम्पादक - निरंकार देव सेवक)

(ग) बच्चन के विशिष्ट पत्र (संम्पादक - डा० चन्द्र देव सिंह)

(घ) पाती फिर आई (संम्पादक - डा० जीवन प्रकाश जोशी)

उपर्युक्त संग्रहों के माध्यम से बच्चन के विविध पत्र प्रकाश में आ सके हैं। इनमें से अधिकांशतः उनको लिखे गये पत्रों के उत्तर के रूप में, कुछ प्रियजनों को उन्होंने स्वतः पत्र लिखे हैं जिनमें कुशल-क्षेम के अतिरिक्त साहित्यिक रचनाधर्मिता के प्रति जिज्ञासायें हैं, व्यक्तिगत भावाकुल स्नेह प्रवाह है तथा वैचारिक एवं संवेदनात्मक परिपार्श्वों का अतलस्पर्शी प्रस्तुतीकरण है। इन पत्रों में कहीं-कहीं उनका स्वाभाविक सौंदर्यबोध अनायास पत्रार्पित हुआ है। प्रत्यक्ष सौंदर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के स्थान पर बहुधा इन स्थलों पर सौंदर्याभास का प्रत्यक्षीकरण हुआ है।

(iv) डायरी में –

प्रवास की डायरी

बच्चन जब कभी घर से बाहर जाते थे और यह प्रवास लम्बा होता था तो अपने संस्मरणों को डायरी में लिखते जाते थे। उन्हीं सस्मरणों को 'प्रवास की डायरी' के नाम से प्रकाशित कराया गया है। अपने शोध कार्य के लिये जब बच्चन कैंब्रिज युनींवर्सिटी गये थे और उन्हें दीर्घावधि तक कैंब्रिज में प्रवास करना पड़ा था, वहाँ उन्होंने जो कुछ देखा था, महसूस किया था, स्मृतियों के द्वारा अपने प्रियजनों के लिये जो कल्पनाऐं की थी, विदेश के जिन प्राकृतिक स्थलों, व्यक्तियों, स्थानों और समारोहों से परिचित और सम्बन्धित हुए थे, इसका विवरण उन्होंने 'प्रवास की डायरी' में दिया है। डायरी लेखन मे भी उनकी सहज सौंदर्यानुभूति स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। मार्जरी के नारी सौंदर्य का, किलार्नी के प्राकृतिक सौंदर्य का और विदेशी भूमि पर मिलने वाले लोगों के व्यवहारिक सौंदर्य का निरूपण उन्होंने अपनी डायरी में किया है। जिस समय वह कैंब्रिज पहुंचे जो कि लन्दन से ६० किलोमीटर दूर है तो डेढ़ मील की लम्बाई, चौड़ाई की समतल भूमि पर बसे कैंब्रिज के प्रथम सम्पर्क में ही अभिभूत हो गये थे जिसका वर्णन उन्होंने 'प्रवास की डायरी' में किया है –

"मुझे सारा कैंब्रिज ही साफ-सुथरा और चित्ताकर्षक लगा। कैंब्रिज के सैकड़ों साल पुराने कालेजों की इमारतों के सिलसिले, केम के दूसरे किनारे से जोड़ने वाले अलग-अलग आकार प्रकार वाले पुल, तरंगाच्छादित नदी की सतह पर तैरती रंगीली बतखें, दुग्धधबल हंसों के जोड़े, नदी पर तैरती नावें तथा पानी की सतह को छूने की चेष्टा करते विलो वृक्षों की लम्बी कतारें, इन वृक्षों के अन्तराल से झांकते डैफोडिल्स (नरगिस) के सुनहरें खेत जिनकी पृष्ठ भूमि से झांकता झाड़ियों का हरियाला विस्तार – सब मिलकर एक आकर्षक स्वप्न के रूप में उनकी चेतना पर छा गया।"[1]

नारी के प्रति बच्चन का लगाव शाश्वत है। कैंब्रिज में भी जब भी कभी अवसर आया तो नारी के प्रति उनका उदारता पूर्ण और समर्पित रूप देखने को मिला। ११ मई १९५२ को उन्होंने लिखा है –

'नारी क्यों उदार हृदय नहीं हो पाती ?

---

१ बच्चन रचनावली भाग-८ – प्रवास की डायरी से

पश्चिम का पुरूष नारी की अनुदारता, ओछेपन, निम्न वृत्ति - Something mean and base about her से इतना घबरा गया है कि वह उससे अलग रह कर पुरुष को अपना संगी, साथी, मित्र सहचर बनाने को उद्यत है। नारी उसके लिये असह्य होती जा रही है .... स्त्री की ईर्ष्या, स्वार्थ, संकुचित मनोवृत्ति, अनुदारता, स्वाभिमान की भावना आदि जितनी बुरी तरह व्यक्त हो रही है, उतनी शायद किसी युग में नहीं हुई।........ सभ्यताऐं पुरूष और स्त्री के सन्तुलित सम्बन्धों पर स्थित रहती है। [१]

----

१ बच्चन रचनावली भाग-८ - प्रवास की डायरी - पृ०सं० ३११-३१२

(v) कहानियों में -

'बच्चन' ने कहानियां लिखने की भी चेष्टा की। इस उपक्रम में १६२६ से १६३३ के बीच उन्होंने जो कहानियां लिखी वे प्रारम्भिक रचनाऐं तीसरा भाग से संकलित करके प्रकाशित हुई। पहली कहानी - 'माता और मातृ भूमि' है। इस कहानी में माँ के कर्त्तव्यनिष्ठ बलिदान को दिखाया गया है, जो अपने बेटे उमर के विकास के लिये तथा समाज के कल्याण के लिये खुदकशी कर लेती है। अफगानिस्तान के लिये उमर को अपनी जिन्दगी दाव पे लगानी थी। माँ का प्यार बेटे के कर्त्तव्य मार्ग मे बाधक था अतः माँ ने खुदकशी करके बेटे को कर्त्तव्य पालन के लिये मुक्त कर दिया। उसका पत्र उसके बलिदान का दस्तावेज है -

प्यारे बेटा उमर

सलामत रहो।

मैंने खुदकशी कर ली है। प्यारे उमर तुम मेरे मरने का अफसोस न करना। तुम्हें मैं उस बड़ी माँ की गोद में सौंप रही हूँ। तुम उसकी खिदमत करना।" [१]

दूसरी कहानी "संकोच त्याग" है। इस कहानी मे बसन्त एक ऐसा नवयुवक है जिसके अभिभावक उसका विवाह इस लिये नहीं करते कि विवाह से बसन्त की शिक्षा मे बाधा होगी। उसका सम्बन्ध प्रभा नामक युवती से तय हो गया है, किन्तु बसन्त की शिक्षा ही उस विवाह में बाधक है। चार वर्ष तक प्रभा का विवाह कैसे रुक सकेगा ? यह समस्या थी, जिसे अन्ततोगत्वा प्रभा ने ही सुलझाया। उसने अपने माता पिता से निःसंकोच कह दिया कि आप लोग तीर्थ यात्रा के लिये चलें जायें। मैं जब तक बसन्त की शिक्षा पूरी नही हो जाती स्वयं भी बोर्ड में रहकर अपनी शिक्षा पूरी करूंगी। जब बसन्त ने प्रभा से पूछा - कि दादा से यह कहते हुए शर्म तो बहुत आयी होगी तब प्रभा ने कहा - "शर्म की तो कोई बात नहीं थी जहाँ शर्म न करनी चाहिए वहाँ शर्म करने से तो हमारा जीवन नष्ट हो जाता है।" [२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चन की प्रारम्भिक रचनाओं में प्रस्तुत कहानियां आदर्श से प्रेरित हैं। नारी के प्रति उनके स्वाभाविक, रागात्मक, आकर्षण की छाया तो आभासित होती है, किन्तु प्रत्यक्षतः इन कहानियों के माध्यम से बच्चन ने मूल्य, नैतिकता और आदर्श को

---

१ बच्चन रचनावली भाग-६ - पृ०सं० २०५ माता और मृतभूमि कहानियां से
२ बच्चन रचनावली भाग-६ - पृ०सं० २१० संकोच त्याग कहानियां से

प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। हाँ यत्र-तत्र दैहिक, प्राकृतिक तथा मनोगत सौंदर्य की झलकियां दृष्टिगत हो जाती हैं। इस संग्रह की अन्य कहानियां है – 'अंचल का बन्दी', 'चिड़ियों की जान जाये' 'लड़कों का खिलौना', 'हृदय की आंखे', 'धर्मपरीक्षा', 'खिलौने वाला', 'दुःखनी', 'ठाकुर जी', 'उऋण', 'स्वार्थ' और 'चुन्नी मुन्नी'।

(vi) समीक्षा में -

बच्चन की प्रसिद्धि उनके काव्यात्मक सृजन के कारण है, किन्तु उनकी लेखनी ने प्रायः प्रत्येक काव्येतर विधा का स्पर्श किया है। पन्त काव्य पर उन्होंने अपनी अकूत समीक्षा सामर्थ्य का परिचय दिया है। उन्होंने पंत की 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव', 'गुंजन', 'ज्यौत्स्ना', 'युगान्त', 'चिदम्बरा', 'ग्राम्या', 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्णधूलि' तथा 'उत्तरा' कृतियों की समीक्षा की है।

''बच्चन के अनुसार - 'वीणा', 'गृन्थि' और 'पल्लव' पन्त के बचपन के हास, 'गुंजन' उनके यौवन का मधुय विलास, 'ज्यौत्स्ना', 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' उनकी प्रौढ़ता का बुद्धि विकास, 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा' तथा बाद की रचनाऐं उनके जरा का अन्तर्नयन प्रकाश कहूंगा।....... बच्चन को 'चिदम्बरा' के 'चरण चिन्ह' में पन्त का यह वाक्य पढ़कर बहुत सन्तोष हुआ 'मेरे काव्य दर्शन की कुंजी' निश्चय ही ज्योत्सना मय है। ... 'उत्तरा' को सौंदर्य बोध तथा भाव ऐश्वर्य की दृष्टि से मैं अबतक की अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति मानता हूँ।'' [1]

वस्तुतः पन्त काव्य की समीक्षा के माध्यम से बच्चन ने कवि की प्रस्तुति को ठीक से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। ये कृतियां पन्त की स्वयं की सारस्वत चेतना का समुल्लास हैं। इनमें सोच और संवेदना के माध्यम से यदि सौंदर्य का प्रस्फुटन हुआ है तो वह उसका सम्बन्ध पंत की सौंदर्यमयी दृष्टि से है। वैसे बच्चन के मतानुसार कवि की सर्वोच्च सौंदर्यानुभूति के दर्शन उस समय होते हैं, जब वह हिमालय जैसे गिरि प्रदेशों के प्राकृतिक ऐश्वर्य का निरूपण कर रहे होते हैं। यदि इस कृति के माध्यम से बच्चन की सौंदर्यानुभूति तलाशनी हो, तो वह स्वयं पंत के शरीरिक सौंदर्य के निरूपण में दृष्टिगोचर होती है -

''मुझे वह दिन अच्छी तरह याद हैं जब कटरा इलाहाबाद के पीले शिवालय की गली में अपने माझा जी के घर के सामने मैंने आपको पहले पहल आते देखा था। मैं स्तब्ध हो आपको देखता ही रह गया था क्या मनुष्य इतना सुन्दर भी हो सकता है ?.... और आज आप साठवें में हैं और मैं तिरपनवें में। मैं आज भी स्तब्ध हूँ, आज की स्तब्धता का विषय है आपका कृतित्त्व एवं व्यक्तित्व। क्या कवित्त्व इतना दिव्य हो सकता है? क्या व्यक्तित्व इतना भव्य हो सकता है?'' [2]

''अन्यत्र भी बच्चन का यह कथन पंत को लेकर उनकी सौंदर्यानुभूति का परिचायक है। 'एक दिन छत पर खेलते हुए क्या देखता हूँ कि एक अत्यन्त सुन्दर सुकुमार गौर वर्ण, लम्बे

---

१. बच्चन रचनावली भाग-६ पृ०सं० ८६

२. बच्चन रचनावली भाग-६ पृ०सं० २४ पंत को बच्चन द्वारा लिखे पत्र का एक अंश

सुनहरे केशों वाला व्यक्ति दो युवकों के साथ जो उसके दोनों ओर जैसे उसकी रक्षा करने के लिये चल रहे हैं। गली से – अपने चारो ओर की दुनिया से बिल्कुल विरक्त, कुछ खोया खोया सा जा रहा है। उसे मैंने देखा तो देखता ही रह गया, क्योंकि इतना सुन्दर और अनोखा आदमी मैंने कभी देखा ही नहीं था। तभी मामी ने धीमे से कानों में कहा – यही सुमित्रा नन्दन पन्त हैं, कवि हैं, पड़ोस की पहाड़िन बहिन ने बताया था कि उनके भाई लगते हैं। पैदा होते ही माँ मर गई थीं, बहुत सुकुमार है।'' [१]

यहां तक कि पन्त के पचास वर्ष के हो जाने पर भी बच्चन उनके अगाध सौंदर्य के दर्शन करते है-

''लेकिन पचास वर्ष की उम्र के लोगों में इसमें आप चाहें तो औरतों को भी शामिल कर सकते हैं- अगर आप पंत जी को खड़ा कर दें तो आज भी मैं उन्हें उनकी सुन्दरता के लिये सबसे ज्यादा नम्बर दूंगा। थोड़े दिन हुए एक विदेशी चित्रकार ने इनसे कहा था कि यदि युरोप में होते तो आपको केवल माडल बनाने के लिये लोग हजारों रूपये देने को होते है। पंत जी के बालों में अब वह सुनहलापन नही है। वे भूरे और सफेद हो चले हैं पर आज भी वे घुंघराले हैं और कंघी के क्षणिक स्पर्श से शोभायमान हो जाते है।'' [२]

अन्त में पंत के सम्बन्ध में बच्चन का यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कि पन्त के सौंदर्य का पावनता से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उनके ही शब्दों में – ''पन्त को प्रायः सौंदर्य उपासक कवि कहा गया है पर उनके सन्त ने सौंदर्य को तबतक स्वीकार नहीं किया, जब तक वह पावन भी न हो। कवि की रुचि पर सदा सन्त के संयम का अनुशासन लगा रहा। वे जहां 'उज्ज्वलतन' देखते है वहां 'उज्ज्वल मन' भी देखते है।'' [३]

---

१. बच्चन रचनावली भाग-६ पृ०सं० ४५-४६
२. बच्चन रचनावली भाग-६ पृ०सं० ४७
३. बच्चन रचनावली भाग-६ पृ०सं० ४०

अध्याय - ६

उपसंहार, उपलब्धि एवं महत्त्व

बच्चन के समस्त साहित्य के अनुसंधानपरक परिशीलन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बच्चन के व्यक्तित्व और साहित्यिकचेतना के मर्म का साक्षात्कार करने के लिये आति व्यापक पटल की आवश्यकता है। उनके साहित्य का अनुशीलन संवेदनाओं के सहज मधुर, अतलस्पर्शी दिव्य लोकों के सूक्ष्म सौंदर्याविभोर ऐश्वर्य में विचरण करना है। उनके साहित्य पर प्रथमतः 'रुबाइयात, उमर खैय्याम' का प्रभाव पड़ा था, जिसे उन्होंने पचा कर आत्मसात का लिया था, जो बच्चन के मधुकाव्य में उनकी तत्कालीन अनुभूतियों, मान्यताओं तथा सोचों से अनुप्राणित होकर लोकार्पित हुआ था। छायावाद काल में बच्चन के इस मधुकाव्य - 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश' को तत्कालीन साहित्य समीक्षों ने 'हालावाद' के अन्तर्गत परिगणित किया। अपने किशोर तारुण्य के उत्कर्ष में बच्चन ने मधुकाव्य में अपने सौंदर्यपिपासु हृदय के मदिर आनन्द को वाणी देने का प्रयास किया। मधु की अर्द्धजागृत, अर्द्धतन्द्रिल, किंजल्क गंधित, परागप्रकीर्ण कुंज गलियों में उन्होंने उमर खैय्याम सहित रूबाइयात का साक्षात्कार किया था। स्वयं बच्चन ने अपनी कृति 'नये पुराने झरोखे' में उमर खैय्याम के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए लिखा है -

"मेरे काव्य जीवन में 'रूबाइयात उमर खैय्याम' का अनुवाद एक विशेष स्थान रखता है। उमर खैय्याम ने रूप, रंग, रस की एक नई दुनिया ही मेरे आगे नहीं उपस्थित की, उसने भावना विचार और कल्पना के सर्वथा नये आयाम मेरे लिये खोल दिये। उसने जगत, नियति और प्रकृति के सामने लाकर मुझे अकेला खड़ा कर दिया। मेरी बात मेरी तान में बदल गई। अभी तक मैं लिख रहा था अब गाने लगा।"[१]

वैसे उमर खैय्याम और बच्चन की मदिरा में बड़ा अन्तर है। उमर जीवन की नश्वरता से हताश एवं अभिनिवेश (मृत्युभय) से परास्त मन को क्षणवादी सुखात्मक दर्शन की मादक उत्तेजना में भुलाये रखना चाहते हैं। बच्चन की हाला चेतना की ज्वाला है, जिसका पान करके 'मरण' जीवन का महोत्सव मनाने लगता है। उसकी सौंदर्यानुभूति देशकाल की नाशधर्मिता का अतिक्रमण कर शाश्वत से संयुक्त हो अम्लान एवं अनन्त यौवन का आश्रय स्थल बन जाती है।

---

१. 'नये पुराने झरोखें' भूमिका से

जहाँ उमर की कल्पना क्षण के शाश्वत के पार कालातीत शाश्वत में बिहार नहीं करती, मृत्युभय से पीली, उसके जीवन सौंदर्य की भावना देशकाल की सीमा का अतिक्रमण नहीं करती, वहीं बच्चन की कल्पना देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए शाश्वत मादक उल्लास में विहार करती है। बच्चन के मधुकाव्य में ऐसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं, जिनमें सप्तवर्णीय इन्द्रधनुषों से होड़ लगाने वाली मधु, पिपासु प्रमाता को, अनश्य, जैव्यचैतन्य की अमिट आशा और उल्लास भरी मदिरा पिला कर उसके प्राणों में नवीन जीवन का संचार करती है। बच्चन की 'हाला' में निःसंदेह मानवीय आशाओं, आकांक्षों का भाव-विह्वल उन्मेष है। उसमें शुष्क बुद्धिवादी दर्शन का निष्क्रिय बोझ, सूनापन तथा जगत के प्रति विरक्ति और पलायन की भावना नहीं है। हां जहाँ-तहाँ उनका भावना कलित तरुण हृदय खैय्याम के प्रभाव से जीवन की वाह्य क्षणभंगुरता के विषाद तथा नैराश्य में प्रवहमाण हो उठता है। विषाद से भरे विश्व में वह रूप, रस, गन्ध से परिप्लावित सुन्दरम् का साक्षात्कार करता हुआ अपनी मधु रचनाओं के माध्यम से पाठकों को आशावादी स्वप्न दिखाने में सफल होता है। यौवन के बसन्तोत्सव पर कवि के हृदय में जीवन की जिस उद्दाम अभिलाषा का जलधि उद्वेलित होकर उसकी चेतना में सौंदर्य क्रान्ति की हलचल मचा देता है, उसे अभिव्यक्ति देने के लिये तारूण्य की आरक्त पलाश ज्वाला से भरा हाला का प्रतीक ही संभव तथा सक्षम प्रतीत हो सकता था। बच्चन के सम्पर्क में आकर उमर खैय्याम का मिट्टी का 'प्याला'-'हाला' तथा 'मधुबाला' सबका रूपान्तर हो जाता है और वे अभिनव आनन्द, अभिनव जीवन चेतना तथा अभिनव युग के सौंदर्य बोध के प्रतीकों में परिणत हो जाते हैं। 'बच्चन' के मधुकाव्य का परिशीलन करना सौंदर्यवह्नि की गगन गंगा में अवगाहन करना है, जो देह, मन प्राण में नवीन स्फूर्ति, प्रेरणा तथा आनन्दमय चैतन्य का पीयूष पान कराता है। सहस्रों वसन्तों का सौंदर्य मधुपायी चंचरीकों का स्वर्ण गुंजन, प्रेम विगलित कोकिला की मर्मभेदी मूर्च्छना कवि के मधुकाव्य में सुख-दुःख, आशा-निराशा, संघर्ष-शान्ति तथा आस्था-विश्वास एवं शन्तिमयी कल्पना का सम्मोहन सुगुम्फित कर पाठकों को चकित, रूप मुग्ध तथा प्रीति विभोर कर देता है। पाटल-पावक के वन के भीतर सौरभ की उन्मद वीथियों में विचरण करता हुआ उसका मन, सौन्दर्य उद्वेलित जीवन-बोध के सरोवर में ऊब-डूब करने लगता है। 'मधुशाला', 'मधुबाला' और 'मधुकलश' में बच्चन की मधुवर्षिणी प्रतिभा अविराम रस बरसाती चलती है। उसके कर-कंकणों तथा स्वर्ण-पायलों का अक्षय क्वणन मन में जैसे अपने आप ही बज उठता है। बच्चन की रचनाओं का सर्वाधिक विशिष्ट गुण यह है कि उसकी पंक्तियां बिजली की तरह कौंध कर मन में प्रवेश कर जाती हैं और फिर अपने ही प्राणोत्मत्त प्रकाश के

चांचल्य में स्मृति पट पर चमकार कर उठती हैं और पाठक की अन्तश्चेतना सौंदर्यानुभूति से सराबोर हो जाती है। बच्चन का मधुकाव्य सौंदर्यबोध का चिरचेतन्त प्रवाह है। वह रंगों और ध्वनियों का काव्य है, प्राणों के आनन्द विभोर जीवन का काव्य है, यौवन की उन्मद आकांक्षाओं का काव्य है, सद्यः प्रस्फुटित किशोर सौंदर्य का काव्य है, जिसकी बासन्ती ज्वाला न दग्ध करती है न शीतल। वह गंध मदिर लेप की तरह प्राणों में लिपट जाती है। इस समस्त सृजन में सौंदर्यानुभूति के अनन्त आयाम चेतना को विभोर कर देते हैं। बच्चन के इस काल की कुछ रचनाऐं जैसे – 'मिट्टी का तन', 'मस्ती का तन', 'इस पार उस पार', 'पग ध्वनि', 'हैं आज भरा जीवन मुझमें' तथा 'लहरों का निमन्त्रण', कवि हृदय के शाश्वत यौवन से उफनती दृष्टिगोचर होती हैं। इनमें कवि के चैतन्य का विराट उद्वेलन तो मिलता ही है, जीवन के प्रति एक स्वस्थ निभीर्क दृष्टिकोण तथ व्यापक स्पष्ट विश्व दर्शन भी मिलता है। भावना की ऐसी मुग्ध तन्मयता तथा आनन्द-उद्रेक का ऐसा सबल संन्देश 'बच्चन' की आगे की कृतियों में देखने को कम ही मिलता है। कवि की अनुराग भावना में मस्ती के साथ भक्ति परम्परा की विनम्र कृतज्ञता भी है जो सौंदर्य के पावक को तरुओं की जावक लाली के रूप में पहचानना पसन्द करती है।

अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में 'बच्चन' छायावाद के शब्द-संगीत तथा द्विवेदी युगीन काव्यात्मकता के सुथरेपन से प्रभावित अवश्य प्रतीत होते हैं और 'बंगाल का काल' तथा कुछ अन्य मुक्त छन्द की रचनाओं में उसके भीतर प्रगतिवाद की बहिर्मुखी झिल्ली की झंकार यत्र-तत्र मिलती है, पर उसका कवि मुख्यतः गायक की मादकता लेकर प्रकट हुआ है और उसने आंगन के पेड़ पर अधिवास बनाकर अपने सबल कर्कश स्वरों से इस युग के लोगों को जगाने के बदले उनके हृदय में कोमल नीड़ बना कर, उनके सुख-दुःख को सहलाना ही अधिक श्रेयष्कर समझा है। वह देवदूत या जननायक न बन कर मानव प्राणों के रंग-सखा के रूप में अवतरित हुआ है और भारी भरकम मानव वीणा की जटिल सूक्ष्म झंकारों के बदले, राग की हरी-भरी बांसुरी से प्रणयमत्त स्वरों के फनों की गरल मधुर फूत्कार छोड़कर लोगों के कामनादग्ध मर्म को आनन्द दंशन से रस तृप्त कर आत्म विस्मृत करता रहा है। उसका कवि मात्र तुम्बी फूंकने वाला वासनाओं का संपेरा कभी नहीं रहा पर मध्ययुगीन नैतिकता के अनेक प्रहार उस पर इस युग में हुए हैं, जिनका आभास 'मधुकलश' में 'कवि की वासना', 'कवि की निराशा' तथा 'पथभ्रष्ट' रचनाओं में मिलता है। मधु काव्य के उपरान्त कवि के संग झुकते-झूमते पाठक उसके काव्य सोपानों की राग-भावना के पावक-जावक से रची प्रथम माणिक श्रेणी को पार कर, मानव जीवन के नैराश्य तथा मृत्यु विछोह दुःख से कंटकित दूसरी

श्रेणी की ओर बढ़ते हैं। श्यामा की मृत्यु के आघात से कवि का सम्पूर्ण अस्तित्व बिखर गया था। उसकी चेतना का पोर-पोर आंसुओं से भीग गया था। धरती से गगन तक प्रिया की स्मृति में उसकी दृष्टि अभिज्ञा-चिह्नों को खोजती रहती थी और अन्ततः वह असफल दृष्टि अपनी संकलित पीड़ा कवि कण्ठ में उड़ेल देती है, जो 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर' में पीड़ा की पुकार बनकर शोक-धारा के रूप में प्रवाहित हुई है। अपनी सृजन चेतना की इन पीड़ा भरी दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने तक 'बच्चन' के जीवन में एक मोड़ आ गया था। 'बच्चन' के ही शब्दों में-

"भाग्य के आघात से मैं नहीं बच सका, प्रेम की दुनियां धोखा दे गई, पत्नी का देहावसान हो गया, जीवन विश्रंखल हो गया। साल भर के लिये लिखना बिल्कुल बन्द रहा। फिर मेरी वेदना, मेरी निराशा, मेरा एकाकीपन, निशा निमन्त्रण, एकान्त संगीत और आकुल अन्तर के लघु लघु गीतों में मुखरित हुआ है।" [१]

वेदना के इस काल खण्ड में कवि की अश्रु विगलित चेतना, व्यथावाही लघु गीतों के माध्यम से एक ऐसी शक्ति सृजित करती है, जो पीड़ा के अनन्त समुद्रों तथा मरण के अनन्त आकाशों को पार करने की क्षमता रखती है। वस्तुतः प्रणय विछोह के आघात ने कवि के दुःख को वाणी दे दी। सांसों के तारों द्वारा अपने हृदय की व्यथा को दूसरों के हृदयों में पहुंचा कर उनकी संवेदना को झंकृत करने की आकांक्षा और सर्वोपरि दुःख के 'मूक सौन्दर्य' को पहचानने, उसकी अतल उष्ण गहराइयों में डूबने, उसकी सर्वव्यापकता की परीक्षा की साध- ये तीनों गीत संग्रह ('निशा निमन्त्रण', 'एकांत संगीत', 'आकुल अंतर') बच्चन की कविव्यथा के बहुमुखी रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। निराशा, वेदना, पूर्वस्मृति (मधुकाव्य के स्वप्नों के स्थान पर स्मृति!) अन्तर्दाह, हीन भावना, विश्व से सम्बन्ध विच्छेद की भ्रांति-तिक्तता, गहन अवसाद और उससे भी गहरा अकेलापन। पर अवसाद के इन तमाम गीतों में एक स्वर ऐसा भी है, जो पराजित होने को तैयार नहीं। बच्चन के व्यथा-गीतों की तमिस्रा को बेध कर जिजीविषा का अपराजेय अरूणोदय मानवता के लिये अतिमहत्त्व का प्रेरणा-स्रोत है। बच्चन जैसी विकल और विषम परिस्थितियों में न केवल जिया जा सकना, प्रत्युत सघन भयावह बादलों को चीर कर 'सतरंगिनी' ज्योति किरणों का साक्षात्कार करना व्यथा विगलित मानवता के लिये महान संदेश है। इन गीतों मे निहित आशा कलित जिजीविषा विजिगीषु वृत्तिधर्मी मानवता के लिये कदाचित चिर अभिलषित सौंदर्यानुभूति है।

---

१ मेरी श्रेष्ठ कवितायें पृ०सं० ४६५-४६६

दर्द की इस जमीन पर खड़े होकर कवि ने अपनी व्यथा के माध्यम से मानव हृदय की अतलस्पर्शी पीड़ा तथा युग के शोक-विषाद और निराशा के उदधि को मथकर उसके गरल को अमृत में बदल डाला। अब तक बच्चन मौत की काली रातों के पार जीवन की अरूणिमा के दर्शन करने लग गये थे। उजड़े हुए नीड़ का पुनः निर्माण हो रहा था। जीवन के चिर काम्य प्रणयिनी के शुभागमन से धरती से आकाश तक समस्त आयाम सुगन्धि तथा ज्योति से परिप्लावित हो उठे। विश्व मे कण-कण में अनुस्यूत सौंदर्य तेजी सूरी की मसृण (कोमल) भुजाओं का गलहार बनकर कवि के अस्तित्व को अहोभाव से विभोर कर गया। इस काल की अनुभूतियों का परिणाम् 'सतरंगिनी', 'मिलन यामिनी', 'प्रणय पत्रिका' के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। इन रचनाओं में कवि का प्रणयिनी के सामीप्य से उद्भूत सौंदर्य बोध अपनी समस्त सुषमा के साथ उपस्थित है। बच्चन की रचना यात्रा का यह तीसरा पड़ाव उच्छ्वास, आंसू, आग, धुएं, कींचड़ और कंटको की भीषण भूमि को पार करके आया था, अतः बदले परिवेश और मनोदशा में 'सतरंगिनी', 'मिलन यामिनी', प्रणय पत्रिका' रेगिस्तान की यात्रा के उपरान्त नखलिस्तान में प्रवेश करने के समान है। यह परिवर्तन यकायक नहीं हुआ था। 'आकुल अन्तर' में ही संक्रान्ति काल का आभास होने लगा था। इस रचना मे संघर्ष के शान्त होने के लक्षण अप्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होते है -

क्या तुम लाई हो चितवन में,
उनमें आग नही तब क्या,
संग तुम्हारे खेलूं ? [१]-

कहकर कवि आशा के प्रति झूठमूठ अपनी उपेक्षा दिखाना चाहता है। सत्य यह है कि वह अपनी अन्तर्ज्वाला में प्रणय का अर्घ्य लेने को भीतर ही भीतर आकुल है। दुःख के दारूण बोझ से अब उसका अन्तराल मुक्त हो चुका है। दुःख उसे पीस नहीं सका है, किन्तु कवि उसे आत्मीयता के कारण अभी मन की बाहरी सतहों से चिपकाये हुए है। 'सतरंगिनी' में वह स्पष्ट ही उससे समझौता करके आश्वासन पा लेता है। अपने अचेतन में छिपी अजेय नागिन को वह अपने जीवन प्रागंण में नर्तन की छूट देता है -

"कौंधती तड़ित को जिह्वा सी
विष मधुमय दातों में दाबे
तू प्रकट हुई सहसा कैसे ?
मेरी जगती में, जीवन में।" [२]

---

१. मेरी श्रेष्ठ कवितायें पृ०सं० १२३ 'आकुल अन्तर' से उद्धृत
२. मेरी श्रेष्ठ कवितायें पृ०सं० १३२ 'सतरंगिनी' नागिन शीर्षक से उद्धृत

उस कौंधती तड़ित जिह्वा के विष मधुमय दंशन के उपयोग के लिये उसकी प्राणों के सप्तवर्णीय सपनों में लिपटी आतुर मन की इस हाँ, न की स्थिति में अन्ततः हाँ की विजय का होना जीवन के लिये स्वाभाविक तथा श्रेयस्कर है और यही उसका सुन्दर पक्ष है।

'मिलन यामिनी' के बाद कवि का मानस क्षितिज अत्यन्त व्यापक हो गया है। उसके जीवन, परिवेश, परिस्थितियों, व्यावसायिक कर्मक्षेत्र तथा अध्ययन, मनन एवं चिन्तन का धरातल भी अधिक विस्तृत तथा विचार शंकुल हो गया है। 'प्रणय पत्रिका', 'आरती और अंगारे' के गीतों के झरोखों से उसे जिस नवीन जीवन चेतना के प्रकाश की झांकी मिली है, उसे एक महान काव्य प्रसाद के ऊपर के प्रज्ञा-दीप्त स्वर्ण कलश के रूप में मान्यता दी जा सकती है। इस दौरान कवि ने लोक धुनों पर आधारित लोक गीत भी लिखे हैं, जिनमें कहीं-कहीं किसी मार्मिक कथा-प्रसंग की धड़कनें भी सुनाई पड़ती हैं। लगता है जैसे महानगर और गांव की दुर्लंघ्य दूरी को गीतों का झंकृत पुल बांध कर निकट लाने का प्रयास किया गया है।

बच्चन की साहित्यिक चेतना के विकास की जो व्यापक, गंभीर, मुखर धारा हम देखते आये हैं, उसके अतिरिक्त उसके कवि ने अपने सृजन-चपल प्रेरणा-क्षणों में इधर उधर हाथ मारे है। 'धार के इधर उधर' तथा 'बुद्ध और नाचघर' में ऐसी अनेक रचनाऐं है, जो कवि की बहुमुखी प्रतिभा की शिलालेख हैं। 'बंगाल का काल' में बच्चन ने जिस मुक्त छन्द को अपनाया था, उसमें आगे चलकर कवि की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां परिदृष्ट हैं। 'बुद्ध और नाचघर', 'त्रिभंगिमा' और 'चार खेमे चौंसठ खूटे' अपने उन्मुक्त ऐश्वर्य से दीप्तमान हैं। उनकी लेखिनी ने हिन्दी गद्य की विविध विधाओं को भी अनुप्राणित किया है। कहानी, वार्ता, निबन्ध, संस्मरण, पत्र, डायरी लेखन और आत्मकथा के माध्यम से उन्होंने हिन्दी गद्य को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर', 'दश द्वार से सोपान तक' हिन्दी गद्य साहित्य की महान सम्पदा है। आत्मकथा के माध्यम से न केवल बच्चन के जीवन का पारदर्शी इतिवृत्त लोकार्पित हुआ है, बल्कि बच्चन कालीन भारत के प्रायः समग्र रूपों का प्रत्यक्षीकरण भी हो जाता है। सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से बच्चन की आत्मकथा काव्य से कम प्रभावशाली नहीं है। आत्मकथा के इन चारों खम्भों में बच्चन का सम्पूर्ण आन्तरिक तथा बाह्य जीवन युग की समस्तता को स्वयं में सम्पुटित किये विमल जल राशि वाले पारदर्शी महासमुद्र के रूप में उपस्थित है।

बच्चन के सम्पूर्ण कृतित्त्व के विविध चरण परिस्थितिजन्य मनोदशाओं के कारण बाह्य रूप से प्रथम दृष्टया लम्बी दूरियां लिये हुए प्रतिभाषित होते हैं। उनके मधुकाव्य की तरुण अंगड़ाइयों से

शाश्वत सौंदर्यपान की लालसा, विषाद काव्य में प्रिया के वियोग में उदग्र हताशा मूलक मनो खिन्नता तथा कुचली हुई दूब घास के ऊपर पड़े पानी के छींटों से पुनः हरियायी दुर्बादल जैसी उनकी जिन्दगी – जब उनके जीवन में मिस तेजी सूरी का प्रवेश हुआ – कजरारी घन घटाओं को देख कर मयूर की तरह नांच उठी। विसंगतियों, न्यूनताओं, विपरीतताओं, कुण्ठाओं, हताशा तथा आत्मविघटन के द्वारा अनुभूतियों को मथ कर शुभ्र नवनीत सदृश कितना ही महान साहित्य सृजित करवाया जा सके, किन्तु यदि ये जीवन धारा को पी जाना चाहें अथवा जीवन को मुमूर्षु बना दें, तो इनकी महत्ता किस काम की ? बच्चन की ऐसी ही मनोदशाओं से सृजित साहित्य वेदना के हाहाकारी अस्तित्त्व को तो आश्रय देता है, किन्तु वह बच्चन की चेतना को जिजीविषा से काट नहीं पाता। बच्चन की अपराजेय विजगीषु वृत्ति विषम परिस्थितियों में भी जीवन के पीयूष स्रोत खोज लेती है। निराशा की छाती को चीर कर आशा की जीवन धारा बच्चन की अस्मिता को सराबोर कर देती है। आशा का अभिनव सूर्योदय 'सतरंगिनी' ज्योतिधारा से कृतिक को कृतार्थ कर देता है। अन्ततः चिर प्रतीक्षित मधुरात्रि का आगमन होता है जो 'मिलन यामिनी' बन कर बच्चन को 'प्रणय पत्रिका' प्रस्तुत करने की परिस्थितियां प्रदान करता है। मेरी दृष्टि से हताशा पर आशा का, आंसुओं पर मुस्कान का तथा मृत्यु पर जीवन का विजय-समारोह बच्चन के साहित्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है और इसे ही सुन्दरम् का उच्च्व सोपान भी कहा जाना चाहिए।

परिशिष्ट

(क) उपजीव्य ग्रन्थ

१ तेरा हार

२ बच्चन रचनावली भाग-१

राज कमल प्रकाशन - दिल्ली १६८७
मधुशाला
मधुबाला
मधुकलश
निशा निमन्त्रण
एकांत संगीत
आकुल अंतर
सतरंगिनी
हलाहल
बंगाल का काल
खादी के फूल
सूत की माला

३ बच्चन रचनावली भाग-२
राज कमल प्रकाशन - दिल्ली १६८७
मिलन यामिनी
प्रणय पत्रिका
धार के इधर-उधर
आरती और अंगारे
बुद्ध और नाचघर
त्रिभंगिमा
चार खेमे चौंसठ खूंटे

४ बच्चन रचनावली भाग-३
राज कमल प्रकाशन - दिल्ली १६८७
दो चट्टाने
कटती प्रतिमाओं की आवाज़

५ बच्चन रचनावली भाग-६
राज कमल प्रकाशन - दिल्ली १६८७
कवियों में सौम्य सन्त
नये पुराने झरोखें
टूटी-छूटी कड़िया

६ बच्चन रचनावली भाग-८
राज कमल प्रकाशन - दिल्ली १६८७
प्रवास की डायरी

७ बच्चन रचनावली भाग-६
राज कमल प्रकाशन - दिल्ली १६८७
प्रारम्भिक रचनायें तीसरा भाग कहानियां

८ मेरी श्रेष्ठ कवितायें - बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स (प्रकाशन) -दिल्ली १६६५

६ क्या भूलूँ क्या याद करूँ - बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स (प्रकाशन)-दिल्ली, १६६३

१०. नीड़ का निर्माण फिर - बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स (प्रकाशन)-दिल्ली १६७६

११. बसेरे से दूर - बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स (प्रकाशन)-दिल्ली १६८६

१२ दश द्वार से सोपान तक - बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स (प्रकाशन)-दिल्ली १६६८

१३. नई से नई पुरानी - बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स (प्रकाशन)-दिल्ली १६८५

(ख) उपस्कारक ग्रन्थ

१ साहित्यिक निबन्ध - राजनाथ शर्मा
२ अष्टछाप के कवि - डॉ० विश्वनाथ प्रसाद
३ कामायिनी - जयशंकर प्रसाद
४ अन्तर्यात्रा - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
५ सूर और तुलसी की सौंदर्य भावना-डा० बद्री नरायण क्षोत्रिय
६ प्रेम चन्द्र का सौंदर्य शास्त्र - नन्द किशोर नवल
७ समीक्षा का पाश्चात्य स्वरूप- डॉ० एन०डी० समाधिया
८ हिन्दी साहित्य में सौंदर्य विधान- डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
९. कालजयी - डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
१०. छायावाद में आत्माभिव्यक्ति - डॉ० शशि मुदिराज
११. रचना प्रक्रिया - डॉ० देशराज
१२. नई कविता - डॉ० जगदीश गुप्त
१३. कवि और कृति - शंकर जी करूप
१४. भारतीय संस्कृति - नरेन्द्र मोहन
१५. आथातो सौंदर्य जिज्ञासा - रमेश कुन्तल मेघ
१६. दृष्टव्य - मोनिप विलियम्स संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी
१७. अथर्ववेद
१८. कविता का सृजन और मूल्यांकन - डॉ० सुधेश
१९. हिन्दुत्व मनीषा के विविध आयाम
२०. महाभारत - वेदव्यास - प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर
२१. सुन्दरम् - हरिद्वारी लाल शर्मा
२२. प्रगतिशील कविता में सौन्दर्य चिन्तन - डॉ० तनूजा तिवारी
२३. रामायण बाल्मीकि
२४. एस्थेटिक हिस्टारिकल समरी - क्रोचे
२५. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर - जोसेफ टी शिप्ले
२६. ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक - बी० वासक्वेस्ट
२७. पाश्चात्य काव्य शास्त्र की भूमिका - सम्पादन नगेन्द्र
२८. साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक - रमेश कुन्तल मेघ
२९. छायावाद-काव्य तथा दर्शन - डॉ० हरि नारायण सिंह
३०. The Transformation Nature - डॉ० आनन्द कुमार स्वामी - शोध पत्र
३१. तत्वार्थ दीप निबन्ध - डॉ० प्रेम स्वरूप
३२. चिन्तामणि - आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
३३. तैत्तरीय उपनिषद्
३४. उत्तर रामचरित - भवभूति
३५. कठोपनिषद
३६. मुण्डकोपनिषद
३७. भारतीय संस्कृति और साधना भाग-२ - महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज
३८. रघुवंश - कालिदास
३९. भारतीया साहित्य - बल्देव उपाध्याय
४०. कामायिनी प्रेरणा और परिपाक - रमाशंकर तिवारी
४१. अपभ्रंश साहित्य - डॉ० कोछड़
४२. सूर का श्रंगार वर्णन - डॉ० रमाशंकर तिवारी
४३. कुमार सम्भव - कालिदास

(ग) पत्र-पत्रिकायें आदि

१ ग्रेन्ड क्यूरो न्यूयार्क टाइम्स

२ ५ जनवरी १६३६ को वर्धा आश्रम में हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता द्वारा लिये गये महात्मा गांधी का साक्षात्कार से उद्धृत